(U. G. C. Book Bank)

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ५६

Ayurved College
LIBRARY
Shri Bapu Bolgaum

॥ श्रीः ॥

नाडी-विज्ञानम्

'विबोधिनी'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-

श्री प्रयागदत्त जोषी

1635

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

(U. G. C. Book Bank)

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

५६

श्रीकणादमहर्षिप्रणीतं

नाडीविज्ञानम्

'विबोधिनी' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

पं० प्रयागदत्तजोषी, आयुर्वेदाचार्यः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७२

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : अष्टम, वि० संवत् २०२९
मूल्य : ००-५०

1635

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)
फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
56
****

NĀḌĪ-VIJÑĀNA

(The Science of Pulse)

Of

MAHARṢI KAṆĀDA

Edited with

The 'Vibodhinī' Hindī Commentary

By

Pt. PRAYĀGADATTA JOŚI
Āyurvedāchārya

(U. G. C. Book Bank)

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1 (India)
1972

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office

Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1972
Phone : 63145

1635

Eighth Edition
1972
Price Rs. 0-50

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

प्राक्कथन

नाड़ी-ज्ञान का प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है। जहां तक हो सके इसे सेवा-शुश्रूषा द्वारा प्रसन्न कर गुरु से ही प्राप्त करना चाहिये; यद्यपि जो एकलव्य-सा प्रयत्न करेंगे, बुद्धि का प्रयोग करेंगे, हर एक रोग में नाड़ी की गतियों का अवलोकन करेंगे एवं उन्हें ग्रन्थ से मिलायेंगे तथा दोषों की अंशांशकल्पना शास्त्रोक्त निदानानुसार स्थिर कर नाड़ी से मिलायेंगे और इस तरह से उसका सिद्धान्त करेंगे, वे भी इसे पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं, पर इसमें समय अधिक लगेगा एवं हजारों रोगी देखने पड़ेंगे। आज ऐसे नर-रत्न भी कितने हैं ? अतः जहां तक बन पड़े गुरु की खोज करनी चाहिये।

नाड़ी से वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व तथा सन्निपात एवं रोगों के साध्यासाध्य होने का पता, विशेषतः मृत्यु का पता अच्छी तरह लगता है; यहां तक कि नाड़ी जानने वाला मृत्यु का समय घण्टों में भी निर्धारित कर सकता है। नाड़ी से हर एक रोग का पता चल सकता है, पर यह ज्ञान सांसारिक पुरुषों को मन की स्थिरता कम होने के कारण नहीं हो सकता; क्योंकि इसकी गतियां अनेक रोगों में प्रायः एकसी होती हैं। उनकी सूक्ष्म-सूक्ष्म भिन्नता को योगीजन ही जान सकते हैं। अतः नाड़ी देखने पर भी अन्यान्य लक्षणों से रोग का निश्चय कर ले, फिर चिकित्सा करें; अन्यथा इसमें भूल होने से महान् अनर्थ की संभावना है। यूनानी तथा डाक्टरी चिकित्सा-पद्धतियोंमें भी नाड़ी देखी जाती है। यूनानी नाड़ी-विज्ञान भारतवर्ष से ही सीखा गया है, अतः उसमें कोई नयी बात नहीं है। डाक्टरों का नाड़ी-ज्ञान कुछ और तरह का है। आजकल डाक्टरी चिकित्सा का अधिक प्रचलन होने से तथा कई आयुर्वेदिक शिक्षाकेन्द्रों में भी कुछ डाक्टरी पढ़ाने का नियम होने से यहां भी दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीमद् महर्षि कणाद जी की कृति है। इसमें नाड़ी की भिन्न-भिन्न चालें बहुत ही विचारपूर्वक दी हुई हैं; यहां तक कि भिन्न-भिन्न काम करने पर तथा भिन्न-भिन्न पदार्थ खाने पर भी नाड़ी की चाल में जो अन्तर होता है; दिया हुआ है। मृत्यु-काल-सम्बन्धी नाड़ी इसमें बहुत विस्तार से कही गई है। सम्प्रति इसकी दो मुद्रित प्रतियां लभ्य हैं। एक हिन्दी अनुवाद सहित जिसमें कतिपय श्लोक ही हैं तथा दूसरी संस्कृत टीका सहित। हमने इस दूसरी पुस्तक तथा हमारे पास वर्त्तमान एक उत्कलाक्षर में लिखित ताड़पत्र की पोथी को ही आदर्श मानकर, बाबू श्रीजयकृष्णदास जी गुप्त, अध्यक्ष चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी के अनुरोध से इसको यथामति विस्तृत भाषाटीका सहित सम्पादित किया है। इससे चिकित्सक समाज का यदि कुछ भी उपकार हुआ तो हम अपने को कृतार्थ समझेंगे।

(U. G. C. Book Bank)

डाक्टरों का नाड़ी-ज्ञान

डाक्टर लोग भी हर एक रोग में नाड़ी देखा करते हैं, पर इससे उन्हें कोई विशेष बात का ज्ञान होने की बात मिथ्या है। शायद जब पहले पहल भारत में डाक्टरी चिकित्सा प्रचलित हुई, उस समय वैद्य-हकीमों की देखा-देखी लोगों को विश्वास दिलाने को ही इस तरह हर बात में नाड़ी छूना शुरू कर दिया हो। वे केवल नाड़ी के फड़कन की संख्या एक मिनिट में क्या है, यही गिनते हैं एवं उसे उनके चार्ट से मिलाकर सिर्फ सर्दी-गर्मी की कमी या अधिकता ही मालूम करते हैं या अति आसन्न मृत्यु हो जानते हैं। इसके सिवाय उन्हें और कोई विशेष बात मालूम नहीं होती। ये चार्ट-स्थित संख्यायें उन्होंने भिन्न समय में भिन्न-भिन्न स्थानों के मनुष्यों की जांच कर अपने अनुभव से भिन्न-भिन्न उम्र के लोगों के लिये नियत किये हैं, जो प्रतिमिनट नियत है। यह नीचे दिया जा रहा है :—

गर्भस्थ बालक की	नाड़ी प्रति मिनट		१६० बार
भूमिस्थ "	"	"	१४० से १३० "
एक वर्ष की उम्र तक	"	"	१३० से ११५ "
दो " "	"	"	११५ से १०० "
तीन " "	"	"	१०० से ९९ "
सात " "	"	"	९० से ८५ "
सात से १४ वर्ष तक	"	"	८५ से ८० "
१४ से ३० "	"	"	८० "
३० से ५० "	"	"	७५ "
५० से ८० "	"	"	६० "

इस हिसाब में थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है, उसे व्यक्ति की शारीरिक अवस्था देखकर ठीक कर लिया जाता है। अवस्था ज्यों २ अधिक होती जाती है, नाड़ी का फड़कन भी उसीके अनुसार कम होता जाता है, जो कि ऊपर के चार्ट से स्पष्ट है। इस नियत संख्या से यदि नाड़ी कम फड़कती है तो जितना कम फड़के उतनी सर्दी तथा अधिक फड़कने पर जितना अधिक फड़के उतनी गर्मी समझी जाती है। यही डाक्टरों का नाड़ी-ज्ञान है। इसे वैद्यों को भी याद कर लेना चाहिये और जरूरत हो तो काम में भी लाना चाहिये। यह काम सहज है और इसे हर कोई सीख सकता है।

विनीत

—प्रयाग

विषय-सूची

	पृ०
मंगलाचरणम्	१
वैद्यकप्रचारकाः	"
नाडीनां संख्या मूलस्थानं च	२
आकृतिवर्णभेदेन नामभेदः	"
परीक्षणीया नाडी	३
परीक्षायाः फालरीती	५
अङ्गुलीत्रयेण त्रिदोषज्ञानम्	६
दोषलक्षणज्ञानम्	"
स्वस्था नाडी	"
नाड्या वातादिज्ञानम्	७
त्रिदोषे नाडीगतिः	९
असाध्यसन्निपातजा नाडी	"
मृत्युकालज्ञानम्	१०
असाध्यवल्लक्षितायामपि साध्यत्वम्	१४
निष्पन्दनाड्यामपि मृत्योरपवादः	"
मृत्युभयापवादः	१६
स्वस्थनाडीलक्षणम्	"
दुष्टनाडीलक्षणम्	"
सुखसाध्या नाडी	१७
द्रव्यविशेषभक्षणे नाडीगतिः	"
रसविशेषभोजने नाडीगतिः	१८
रसानां शमनकोपनत्वम्	"
रसानां विपाकः	१९
द्रव्याणामपि रसधर्मत्वम्	"
प्रातरादौ सुस्थनाडीगतिः	२२
ज्वरपूर्वरूपे नाडी	"
सन्निपातपूर्वरूपे नाडी	"
सन्निपातज्वरे नाडीगतिः	२३
वातोल्बणज्वरे नाडीगतिः	"
रमणान्ते नाडीगतिः	२३
समतीव्रवायौ नाडीगतिः	"
पित्तज्वरे नाडीगतिः	२४
श्लेष्मज्वरे नाडीगतिः	"
वातपित्तजा नाडी	२५
वातश्लेष्मिका नाडी	"
रुक्षवातजा नाडी	"
वित्तश्लेष्मजा नाडी	"
रक्तपूर्णमलवती नाडी	२६
कामादौ नाडीगतिः	"
भूतज्वरे नाडीगतिः	"
विषमज्वरे नाडीगतिः	२७
ज्वरे रमणादौ नाडीगतिः	२८
ज्वरे दध्यादिभोजनजा नाडी	"
व्यामादौ नाडीगतिः	"
अजीर्णे नाडी	२९
सुखितमन्दाग्न्यादौ नाडी	"
आमाशयदुष्ट्यादौ नाडी	३०
दीप्ताग्नौ नाडीगतिः	"
ग्रहण्यां नाडीगतिः	३१
वेगरोधविसूच्योर्नाडी	३२
आनाहमूत्रकृच्छ्रयोर्नाडी	३३
शूलरोगे नाडी	"
प्रमेहरोगे नाडी	"
नाडीगत्या विषादिज्ञानम्	"
गुल्मादौ नाडी	३४
व्रणादौ नाडी	"
वान्तशल्याभिहतादेर्नाडीगतिः	३५

Ayurved College
T. G. C. Book Bank Library

॥ श्रीः ॥

नाडीविज्ञानम्

'विबोधिनी' भाषाटीकोपेतम्

मङ्गलाचरणम्—

यद्वक्त्रेभ्यः पञ्चसंख्यागतेभ्यो वेदा जाता ऋग्यजुःसामरूपाः ।
सायुर्वेदाथर्ववेदश्च तस्मिन्नास्तां शम्भौ श्रीकणादस्य भक्तिः ॥ १ ॥

जिसके पाँच संख्यागत मुखोंसे ऋक्, यजुः, साम तथा आयुर्वेद सहित अथर्व वेद उत्पन्न हुए याने पहले पहल जिसने अपने पाँचों मुखोंसे दुनियामें ऋक्, यजुः, साम तथा आयुर्वेद सहित अथर्ववेदका प्रचार किया उस भगवान् शम्भुमें श्रीकणादजीकी भक्ति स्थिर होकर रहे ॥ १ ॥

वैद्यक-प्रचारकाः—

आस्ते वेदः पञ्चमो वैद्यकाख्यो वेत्ता कश्चित्तस्य नास्ते महेशात् ।
तस्माद्धाताऽध्यैष्ट तस्मात्तुराषाट् तस्माज्ज्ञात्वा वक्तुमर्हामि शास्त्रम् ॥

ऋगादि चार वेदोंके अतिरिक्त वैद्यक नामक एक पाँचवाँ वेद भी है पर उसके तत्त्वको सिवाय महेश्वरजीके दूसरा कोई नहीं जानता । बृहत्त्रयी याने चरक, सुश्रुत और वाग्भट में ब्रह्माजी को ही आयुर्वेदका प्रथम प्रचारक माना गया है; क्योंकि ब्रह्माजीने ही चारों वेदों का उपवेदों सहित प्रचार किया जिसमें कि अथर्ववेद का उपवेद यह आयुर्वेद है। पर यहाँ पांचवाँ वेद कहनेसे आगम रूप वैद्यकका याने नाडी-विज्ञान और रसायन-विज्ञानका ही बोध होता है क्योंकि ये योग तथा तन्त्रशास्त्रों के अङ्ग हैं तथा इन दोनों ही के आदि प्रचारक महादेवजी हैं । ये दोनों अङ्ग पहले आयुर्वेदमें नहीं थे क्योंकि बृहत्त्रयीमें कहीं भी इनका उल्लेख तक नहीं है । आयुर्वेदका उपकारी होनेकी वजहसे ही ऋषियोंने इन्हें योग तथा तन्त्रशास्त्रोंसे लेकर वैद्यकमें मिलाया है । इसलिये पञ्चम वेद रूप वैद्यकके ज्ञाता शम्भुजी ही हैं । उससे ब्रह्माजीने सीखा, ब्रह्माजीसे इन्द्रने तथा इन्द्रजीसे पढ़कर ही मैं (कणाद महर्षि) इस शास्त्रको कहने योग्य हुआ हूँ ॥ २ ॥

(U. G. C. Book Ban

नाडीनां संख्या मूलस्थानञ्च—

सार्द्धत्रिकोट्यो नाड्यो हि स्थूलाः सूक्ष्माश्च देहिनाम् ।
नाभिकन्दनिबद्धास्तास्तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ॥ ३ ॥

शरीरधारियोंके याने प्राणियों के शरीरमें साढ़े तीन करोड़ मोटी और पतली नाड़ियाँ हैं। वे तिरछी, ऊपर तथा नीचेको स्थित होकर नाभिकन्दमें बँधी हुई हैं अर्थात् प्राणियोंके शरीरमें नाभिके नीचे जो कन्द है, उसीसे ही ये नाड़ियाँ स्थूल-रूपमें निकलकर ऊपर, नीचे तथा बगलोंकी ओर जाकर शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त होती हुई शरीर भरमें फैल गई हैं। ये ही संख्यामें साढ़े तीन करोड़ हैं। अन्यान्य तन्त्रोंमें नाड़ियोंकी संख्या भिन्न-भिन्न दी हुई हैं, वे अपने अपने तन्त्रों में उपयोग होनेसे ही ली गई हैं। यहाँ सबकी संख्या गिनतीमें साढ़े तीन करोड़ बतायी गयी है सो कोई विरोध नहीं ॥ ३ ॥

आकृतिकर्मभेदेन नामभेदः—

द्वासप्ततिसहस्रन्तु तासां स्थूलाः प्रकीर्त्तिताः ।
देहे धमन्यो धन्यास्ताः पञ्चेन्द्रियगुणावहाः ॥ ४ ॥

उन साढ़े तीन करोड़ नाड़ियोंमेंसे बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थूल याने मोटी हैं जो पाँचों इन्द्रियोंके गुणोंको बहाती हैं अर्थात् नाभिकन्दसे निकलकर बहत्तर हजार संख्यामें विभक्त होकर आँख, कान, नाक, जीभ, चमड़े के गुण रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श तथा अन्यान्य गुणोंको लेती हैं याने इन्हींसे ही इन्द्रियाँ अपने-अपने गुणोंको ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं। इसलिये ये धमनियाँ शरीरमें प्रधान हैं। उनका विस्तृत वर्णन सुश्रुतमें देखिये ॥ ४ ॥

तासां च सूक्ष्ममुषिराणि शतानि सप्त स्युस्तानि(१)यैरसकृदन्नरसं वहद्भिः ।
आप्याय्यते वपुरिदं हि नृणाममीषामम्भः स्रवद्भिरिव सिन्धुशतैः समुद्रः ॥

उन बहत्तर हजार बड़ी धमनियोंमें से सात सौ सिराएँ ऐसी हैं जो अन्दरसे पोली हैं। ये शिराओंके छेद बहुत ही सूक्ष्म हैं। जिस तरह हमेशा पानी बहाने वाली सैकड़ों नदियोंसे समुद्र जलपूर्ण रहता है अथवा जैसे नहरोंसे खेत, बगीचे सींचे जाकर हरे-भरे रहते हैं, उसी प्रकार ये सात सौ सिराएँ भी अन्नरसको बहाकर शरीरको निरन्तर सींचती हुई तृप्त और जीवित रखती हैं अर्थात् इन्हीं सिराओंके द्वारा ही शरीरका प्रत्येकभाग अन्नरस द्वारा सींचा जाकर समभावसे पुष्ट रहता है॥

(१) 'स्वच्छानि' 'स्वस्थानि' इति वा पाठान्तरम् ।

आ पादतः प्रततगात्रमशेषमेषामा मस्तकादपि च नाभिपुरःस्थितेन ।
एतन्मृदङ्ग इव चर्म्मचयेन नद्धं कायं नृणामिह सिराशतसप्तकेन ॥ ६ ॥

जैसे मृदङ्ग इस छोरसे उस छोर तक पतली चमड़ेकी पट्टियोंसे बंधा रहता है ठीक उसी तरह यह मनुष्योंका शरीर भी नाभिकन्दसे निकल कर चारों ओर फैली हुई सात सौ सिराओंसे इस तरह बंधा हुआ है कि शरीरके अवयव अपने-अपने काम कर सकें। मतलब यह कि नाभिकन्दसे निकल कर ये सात सौ सिराएं ऊपर, नीचे तथा बगलोंमें फैली हुई शरीरके सिरसे लेकर पैर तक अवयवोंको यथास्थान संलग्न रख अपने २ काम करनेको समर्थ को बनाती हैं ॥ ६ ॥

परीक्षणीया नाडी—

शतसप्तानां मध्ये चतुरधिका विंशतिः स्फुटास्तासाम् ।
एका परीक्षणीया या दक्षिणकरचरणविन्यस्ता (१) ॥ ७ ॥

इन सात सौ सिराओंमें से चौबीस नाड़ियां स्फुट हैं याने स्पष्टरूपसे मालूम पड़ती हैं। ये चौबीस नाडियां सुश्रुतमें कही गयी गयी हैं जो नाभिकन्दसे दस ऊपर, दस नीचे और चार तिरछी गयी हुई हैं। इन चौबीस नाडियोंमें से भी एक ही नाड़ी परीक्षा योग्य है जो दाहिने हाथ तथा पैरमें फैली हुई हैं, अर्थात् दाहिने हाथसे लेकर दाहिने पैर तक गई हुई हैं। यह मुख्य कर पुरुषों की ही है क्योंकि पुरुषोंकी कूर्मनाडी अधोमुख और स्त्रियोंकी ऊर्ध्वमुख है! इसलिये स्त्रियोंके बाएँ हाथकी नाड़ी देखी जाती है। यह प्रधानतः, किन्तु जब रोगी मरणासन्न होता है तब हाथकी नाड़ी फड़कती नहीं या अव्यक्त रहती है, उस समय पैर, नाक, कण्ठ तथा लिङ्ग आदि स्थानोंकी नाड़ी भी देखी जाती है ॥ ७ ॥

तिर्यक्कूर्मो देहिनां नाभिदेशे वामे वक्त्रं तस्य पुच्छं च याम्ये ।
ऊर्ध्वे भागे हस्तपादौ च वामौ तस्याधस्तात् संस्थितौ दक्षिणौ तौ ॥ ८ ॥

प्राणियोंकी नाभिके पास कूर्मनाडी रहती है। नाभिकन्द, जहांसे सब नाडियाँ निकली हुई हैं एक कछुएका सा आकारविशिष्ट है। इसे ही कूर्मनाडी कहते हैं; यह तिरछे भावसे अवस्थित है। इसका सिर बाईं ओर तथा पूँछ दाहिनी ओर, बाएँ हाथ-पैर ऊपरकी ओर तथा दाहिने हाथ-पैर नीचेकी ओर हैं। यह कूर्म पुरुषोंमें अधोमुख तथा स्त्रियोंमें ऊर्ध्वमुख रहता है ॥ ८ ॥

वक्त्रे नाडीद्वयं तस्य पुच्छे नाडीद्वयं तथा ।

(१) 'करचरणविन्यस्ता' इति पाठान्तरम् ।

Ayurved College LIBRARY

पञ्च पञ्च करे पादे वामदक्षिणभागयोः ॥ ९ ॥

उस कूर्मके मुखमें दो, पूंछमें दो तथा हाथ-पांवोंमें पांच २ नाड़ियां हैं, याने, बाएँ हाथ तथा पांवसे निकल कर दस नाडियां ऊपर को गई हैं, दाहिने हाथ तथा पांवसे निकल कर दस नाड़ियां नीचे को गई हैं तथा मुख और पूंछसे दो-दो नाडी कुल चार नाडियां निकल कर तिर्यक् यानी बगलोंमें गई हैं। इस तरह नाभिचक्रसे चौबीस नाडियां निकली हुई हैं ॥ ९ ॥

वातं पित्तं कफं द्वन्द्वं सन्निपातं रसं त्वसृक (१)।
साध्यासाध्यविवेकञ्च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ॥ १० ॥

वात, पित्त, कफ प्रत्येकका क्षय, वृद्धि या प्रकृतिमें स्थिति, द्विदोष याने वात-पित्त, पित्तकफ या वातकफका कोप, सन्निपात याने तीनों दोषोंका कोप, रस तथा रक्तकी अधिकता या कमी तथा साध्य और असाध्य रोगोंका खास कर सन्निपात-का ज्ञान—ये सब नाडी प्रकाश करती है। अर्थात् वैद्य नाडी देख कर इन सब बातों का पता लगा लेता है ॥ १० ॥

सव्येन रोगधृति (२) कूर्परभागभाजा-
ऽऽपीड्याथ दक्षिणकराङ्गुलिकात्रयेण।
अङ्गुष्ठमूलमधिपश्चिमभागमध्यं
नाडीं प्रभञ्जनगतिं सततं परीक्षेत् (३) ॥ ११ ॥

रोगको धारण करनेवाला याने बताने वाला जो कूर्परका भाग विशेष याने रोगीकी कोहनीके अन्दरकी ओरका वह भाग जहां नाडी फड़कती है, उस स्थानको वैद्य पहले अपने बाएँ हाथसे, हलका-हलका मर्दन आगे-पीछेकी ओर करे क्योंकि इससे नाडीका मार्ग साफ हो जाता है और वातादि दोष अबाध रूपसे गमन करते हैं जिससे उनका पता ठीक-ठीक लगता है। फिर अंगूठेकी जड़से पासके हिस्से याने कलाईके दो अंगुल स्थान पर अपने दाहिने हाथकी तीन अंगुलियों—तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिकाको रखकर दबावे तथा वहीं पर पहले वातनाडीकी हमेशा परीक्षा करे याने वात द्वारा गति है जिसकी ऐसी नाडीकी परीक्षा हमेशा किया करे। वातनाडी कहनेसे ही पित्त, कफ, द्वन्द्व तथा सन्निपातादि, सबका बोध होता है कारण ये सब गतिहीन हैं, इसलिए

(१) 'रसं त्वसृक्' इत्यत्र 'तथैव च' इति वा पाठः। (२) 'साचिधृति' इति प्राचीनपाठः। (३) 'नाडी प्रभञ्जनगतिः सततं परीक्ष्या' इति पाठान्तरम्।

वायु द्वारा ही इनकी गति होती है ॥ ११ ॥

परीक्षायाः कालरीती—

प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम्।
सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत् ॥ १२ ॥

सुबह ही मल-मूत्रत्यागादि नित्य कर्म कर चुका हुआ वैद्य आरामसे बैठ कर प्रात-कृत्यादि सब कर चुके हुए एवं सामने आरामपूर्वक बैठे हुए रोगी के नाडी की परीक्षा करे। दोपहरको उष्ण होनेसे तथा शामको दिनकी हरकतोंसे नाडी के चंचल रहनेके कारण, तथा रातके आरामसे शरीर तथा मनके साफ रहनेके कारण ही नाडीकी परीक्षा सुबह की जाती हैं, पर रोग अधिक हो या जरूरत पड़े तो जब चाहे परीक्षा कर सकते हैं। मल-मूत्रादि भरे रहनेसे तथा तिरछे बैठे रहनेसे नाडीका पता ठीक-ठीक नहीं चलता। अतः शौचादिसे निवृत्त होकर नाडीकी परीक्षा करे या करावे ॥ १२ ॥

तैलाभ्यङ्गे च सुप्ते(१) च तथा च भोजनान्तरे।
तथा न ज्ञायते नाडी यथा दुर्गतमा नदी ॥ १३ ॥

तैलकी मालिश आदि करने पर, सोते समय, भोजन करते समय, तथा भोजन करनेके बाद भी नाडीका सम्यक् ज्ञान नहीं होता। जैसे अति गम्भीर नदीकी गति नहीं मालूम होती उसी प्रकार इन समयोंमें भी नाड़ी स्वाभाविक गति छोड़ विकृत गति धारण करनेकी वजहसे ठीक ठीक जानी नहीं जा सकती ॥ १३ ॥

अङ्गुष्ठस्य तु मूले या सा नाडी जीवसाक्षिणी।
तस्या गतिवशाद्विद्यात् सुखं दुःखं च रोगिणाम्(२) ॥ १४ ॥

अंगूठे की जड़के नीचे जो नाडी फड़कती है वह जीवकी साक्षिणी स्वरूप है याने उसीके-फड़कनेसे ही शरीरमें प्राण है ऐसा ज्ञान होता है तथा उसका फड़कना बन्द होने पर मृत्यु हो जाती है। उसी नाडीका भिन्न-भिन्न गतियोंसे वैद्य रोगसे छूटने या रोग चढ़नेकी बातोंका पता लगावे। स्वस्थोंका भी रोग तथा आरोग्यका पता उसीसे लेवे ॥ १४ ॥

स्नायुर्नाडी वसा हिंस्रा धमनी धामनी धरा।
तन्तुकी जीवितज्ञा च सिरापर्यायवाचिकाः ॥ १५ ॥

स्नायु, नाडी, वसा, हिंस्रा, धामनी, धरा, तन्तुकी, जीवितज्ञा, ये सब

(१) 'स्वप्ने 'प्रसुप्ते' चेति पाठान्तरद्वयम्। (२) 'देहिनाम्' इति पाठान्तरं साधु।

सिरा याने नाडीके ही अर्थवाचक शब्द हैं ॥ १५ ॥

अङ्गुलित्रयेण त्रिदोषज्ञानम्—

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च ।
अन्ते च वहते श्लेष्मा नाडिकात्रयलक्षणम् ॥ १६ ॥

नाडी पर हाथ रखते ही पहले बातकी नाडी मालूम पड़ती है, मध्यमें पित्तकी नाडी तथा अन्तमें कफकी नाडी फड़कती है, वायुके चंचल और गतिमान होनेके कारण पहले फड़कती है, पित्तके उष्ण होनेके कारण चपल होनेसे मध्यमें मालूम होती है तथा कफके शीतल तथा मन्द होनेके कारण आखीरमें मालूम पड़ती है। अथवा यों समझिये कि नाड़ीका यह स्वभाव ही है कि नाड़ी पकड़ने पर पहली यानी तर्जनीके नीचे वातनाड़ी, मध्यमाके नीचे पित्तनाड़ी तथा अनामिकाके नीचे कफनाड़ीकी गति मालूम होती है। नाड़ियोंका सर्ववहा होने पर भी यह स्वभाव ही समझना चाहिये। ये ही तीनों नाडीके लक्षण हैं ॥ १६ ॥

दोषलक्षणज्ञानम्—

वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला ।
अन्ते च वहते श्लेष्मा मिश्रिते मिश्रलक्षणा ॥ १७ ॥

त्रिदोष जब कुपित रहता है उस समय यदि पित्त अत्यन्त कुपित हो तो वायु मध्यमें बहती है, पित्त आगे चलता है तथा कफ अन्तमें वहता है। यदि दो दोष अति कुपित हों तो इसी क्रमसे नाड़ी दोनों स्थानोंमें फड़का करती है। (दूसरे पुस्तकोंमें दिखाई न पड़नेसे यह श्लोक प्रक्षिप्त है ऐसा अनेकोंका मत है) ॥ १७ ॥

आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च ।
अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदैः ॥ १८ ॥

नाड़ीमें पहले या पहली अङ्गुलीके नीचे पित्तकी नाड़ी, मध्यमें या मध्यमाके नीचे कफकी नाड़ी तथा अन्तमें या अनामिका अङ्गुलीके नीचे वातकी नाड़ी वहती हैं, ऐसा सब शास्त्रके जानकारोंका मत है। (यह श्लोक एक दम अमूलक मालूम पड़ता है क्योंकि कफका मध्यमें तथा वातका अन्तमें बहना किसी भी तन्त्र में नहीं मिलता) ॥ १८ ॥

स्वस्था नाडी—

भूलताभुजगप्राया स्वच्छा(१) स्वास्थ्यमयी सिरा ।

(१) 'भूलतागमनप्राया स्वस्था' इति पाठान्तरम् ।

सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ १९ ॥

स्वस्थ पुरुषकी दोषरहित नाड़ी केंचुवा या सांपकी तरह धीर स्थिर गति से चलती है। जो मनुष्य सुखी हो याने हर तरहसे रोग-रहित हो उसकी नाडी मन्दगतिसे चलती हुई भी शिथिल नहीं होती यानी मन्दगतिसे तो चलती है पर फुर्तीली रहती है। यह स्वस्था नाडीकी साधारण गति है ॥ १९ ॥

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता ।
सायाह्ने धावमाना च चिराद्रोगविवर्जिता ॥ २० ॥

अनेक दिनोंकी रोगरहित नाडी सुबह चिकनी याने मन्दगतिसे, दोपहरको गरम तथा शामको चंचल चालसे चलती है। इसका कारण यह है कि स्वभाव से ही सुबह कफका बल अधिक होता है, इससे नाडी धीर गतिसे चलती है। दोपहर को पित्त प्रबल रहता है, इससे नाडी गरम तथा तेज चलती है तथा शाम को वायु बलवान् रहता है, इससे नाडी तेज तथा टेढ़ी चलती है। इसी प्रकार भोजनके भी आदिमें, जीर्ण होते वक्त तथा जीर्ण होने पर नाडी की चाल ठीक ऐसी ही होती है। यदि ऐसी चाल रहे तो यह समझना चाहिये कि उस मनुष्य को अनेक दिनसे रोग नहीं हुआ और न अनेक दिन तक कोई रोग होगा ॥ २० ॥

नाड्या वातादिज्ञानम्—

वाताद्वक्रगता नाडी चपला पित्तवाहिनी ।
स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत् ॥ २१ ॥

नाडी वातके कोपसे वक्र याने टेढ़ी मेढ़ी चालसे चलती है क्योंकि वायुकी चाल टेढ़ी होती है, पित्तके कोपसे नाडी तेज चालसे चलती है क्योंकि पित्त आग्नेय है और अग्नि ऊंची ही जलती है, कफके कोपसे नाडी मन्दगसिसे चलती है क्योंकि कफ जल धातु है और नीचे जाने वाला तथा शीत गुण वाला है। यदि दो दोष या तीन दोषोंका प्रकोप हो तो नाडी भी मिश्रित याने उन कुपित दोषों की चालसे क्रमसे चलती है। इस प्रकार दोषोंके कोपके अनुसार नाडीकी गति जाननी चाहिये ॥ २१ ॥

सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति वबुधाः प्रभञ्जनेन नाडीम् ।
पित्तेन काक-लावकभेकादिगतिं विदुः सुधियः ॥ २२ ॥

नाडी जानने वाले पण्डितोंका मत है कि नाडी वायुके कोपसे सांप तथा जोंक आदिकी जैसी चालसे चलती है याने जैसे सांप या जोंक टेढ़े-मेढ़े चलते हैं,

उसी प्रकार वातके प्रकोपसे नाडी भी टेढ़ी-मेढ़ी चलती है। पित्तके कोपसे नाडी कौवा, लवा तथा मेढक आदिकी गतिसे चलती है, याने ये जिस तरह फुदक-फुदक कर तेजीसे चलते हैं तथा बीच-बीचमें कुछ विश्राम लेते हैं अथवा एकदम ही अधिक दूर तक फुदकते ही चले जाते हैं उसी तरह पित्तनाडी भी कूदती हुई विश्राम लेती हुई या बिना ठहरे ही तेज चलती है ॥ २२ ॥

राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ।
कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंभृता ॥ २३ ॥

कफपूर्ण नाडी राजहंस, मोर, कबूतर, कपोत तथा मुर्गेकी जैसी चाल पकड़ती है अर्थात् जैसे ये जीव गम्भीर तथा धीर गतिसे पृथ्वीको दबाते हुए-से चलते हैं, नाडी भी ठीक उसी प्रकार गंभीर धीर तथा अंदरको घुसती हुई-सी चलती है ॥२३॥

मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा ।
वातपित्तद्वयोद्भूतां तां वदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥

जो नाडी बारम्बार सांप आदिकी जैसी चालसे चले तथा फिर मेढक आदिक चालसे चले उसे वातपित्तके कोपसे चलती हुई जाने। ऐसा मनीषियोंका कहना है ॥

भुजगादिगतिं नाडीं राजहंसगतिं तथा ।
वातश्लेष्मसमुद्भूतां भाषन्ते तद्विदो जनाः ॥ २५ ॥

जो नाडी पहले सांप आदिकी गतिसे चले तथा फिर राजहंसकी गतिसे चले उसे वात-कफके कोपसे चलती हुई समझे, ऐसा नाडी जानने वाले कहते हैं ॥ २५ ॥

मण्डूकादिगतिं नाडीं मयूरादिगतिं तथा ।
पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥ २६ ॥

जो नाडी पहले मेढक आदिकी गतिसे चले तथा फिर मोर आदिकी चालसे चले, तो पण्डित जन उस नाडीको पित्तकफके कोपसे चलती हुई बताते हैं ॥ २६ ॥

सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ।
कफवातोद्भवा नाडी सर्पहंसगतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

पित्त और कफ यदि कुपित हुए हों तो नाडी पतली, ठण्डी और स्थिर होती है याने छूनेसे पतली और ठण्डी सी जान पड़ती है तथा उसकी गति स्थिर होती है। सूक्ष्मता पित्तसे तथा शीतता और स्थिरता कफसे होती है। उसी प्रकार कफ-वातके कोपसे नाडी कभी सांपकी-सी तथा कभी हंसकी-सी चालें चलती है ॥ २७ ॥

त्रिदोषे नाडीगतिः—

उरगादिलावकादिहंसादीनां च बिभ्रती गमनम् ।
वातादीनां च समं धमनी सम्बन्धमाधत्ते ॥ २८ ॥

त्रिदोषके कोप या सन्निपातमें नाडी पहले सर्पादिकी गति, फिर लवा आदिकी गति तथा बादको हंसादिकी गति धारण करती है। इस प्रकारसे पहले वातनाडी फिर पित्तनाडी और कफनाडी चलती है। इस क्रमसे यानी वात, पित्त, कफके क्रमसे छूटकर नाड़ी चले तो उसे असाध्य समझना चाहिए ॥ २८ ॥

लावतित्तिरिवार्ताकगमनं सन्निपाततः ।
कदाचिन्मन्दगा नाडी कदाचिच्छीघ्रगा भवेत् ।
त्रिदोषप्रभवे रोगे विज्ञेया सा भिषग्वरैः ॥ २९ ॥

सन्निपातके कोपसे नाडी लवा, तीतर तथा बटेरकी जैसी चालोंसे चलती है। यदि नाडी कभी तो मन्द-मन्द गतिसे चले तथा कभी तेज चाल चले तो वैद्य समझ ले कि रोग त्रिदोषसे हुआ है याने त्रिदोषमें नाडी इस गतिसे चलती है ॥२९॥

असाध्यसन्निपातजा नाडी—

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा ।
नित्यं स्थानात् स्खलति पुनरप्यङ्गुलिं संस्पृशेद् या
भावैरेवं बहुविधविधैः सन्निपातादसाध्या ॥ ३० ॥

यदि सन्निपातमें नाड़ी मन्द २ शिथिल २ भयभीतके जैसे, रह-रह कर तथा अति सूक्ष्म गतिवाली हो जाय यानी कठिनतासे हाथ आवे या ऐसी होकर लोप हो जाय, बारम्बार स्थानसे छूट जाय याने फड़कन कलाई से ऊपर चला जाय तथा फिरसे बहने लगे, इस प्रकार अनेक प्रकारसे नाड़ी चले तो सन्निपातको असाध्य समझे ॥ ३०

अन्यच्च—अत्युच्चका(१) स्थिराऽत्यन्तं या चेयं मांसवाहिनी ।
या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ३१ ॥

जो नाडी अति ऊंची हो याने बाहरसे ही दीख पड़े, अति स्थिर याने बहुत ही धीमी चालसे चले, मांस-भक्षणकी नाडी जैसी चले यानी डंडेकी तरह मोटी व कठिन चले, अति सूक्ष्म भावसे चले तथा जो तिरछी चाल से चले तो जाने कि ये सब सन्निपातसे असाध्यता जताने वाली हैं यानी यदि सन्निपातमें नाडी इन

(१) 'याऽत्युच्चका' 'या वा स्थूला' इति पाठान्तरम् ।

गतियोंको धारणकर चले तो असाध्य समझे ॥ ३१ ॥

अन्यच्च—महातापेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता सिरा ।
नानाविधगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ३२ ॥

यदि शरीर बहुत ही गरम हो मगर नाडीका स्पर्श शीतल हो और यदि शरीर बहुत ही शीतल होनेपर भी नाडीका स्पर्श गरम हो तथा नाडीकी चाल अनेक प्रकारकी हो जाय याने कभी बात की-सी, कभी पित्त की-सी, कभी श्लेष्मा की-सी, कभी द्वन्द्व तथा कभी त्रिदोष की-सी हो जाय तो उस मनुष्यकी मृत्यु निश्चय हो जाती है ॥ ३२ ॥

त्रिदोषे स्पन्दते नाडी मृत्युकालेऽपि निश्चला ।
ज्ञेयं सर्वविकारेषु वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥ ३३ ॥

सन्निपातमें नाडी निश्चल हुई भी मृत्युके समय फड़क जाती है। इसी प्रकार अन्यान्य सब रोगों में भी कुशलकर्म वैद्य जाने। मतलब यह कि, सन्निपातमें हो या अन्य कोई रोगमें हो यदि अनेक कालतक बन्द हुई नाडी विना कोई नाडी लौटाने की चेष्टाके अकस्मात् फड़कने लगे तो समझ ले कि मृत्यु निश्चय ही होगी ॥ ३३ ॥

अन्यच्च—पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीं
सन्तानभ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्राधिरूढामिव ।
तीव्रत्वं दधतीं कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वतीं
नो साध्यां धमनीं वदन्ति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥ ३४ ॥

यदि नाडी पहले पित्तकी गति याने गरम तथा तेज चालसे चले, फिर वायुकी गति याने सूक्ष्म तथा टेढ़ी-मेढ़ी चालसे चले तथा पीछे कफकी चाल याने मन्द-मन्द गतिसे चले; इस प्रकार वातपित्त कफका क्रम छोड़कर चले, चक्रपर चढ़ी हुई सी कभी ऊपरकी अङ्गुलीके नीचे, कभी बीचकी अङ्गुलीके नीचे तथा कभी अनामिकाके नीचे ये ही गतिक्रम विपर्यय पूर्वक बारम्बार विस्तारपूर्वक फड़के; कभी तो तेज चले याने पित्तगति हो जाय, कभी मोरकी-सी चले याने कफगति हो जाय तथा कभी सूक्ष्म हो जाय अर्थात् वातजन्यगतिवाली हो जाय इस प्रकार भी क्रम छोड़ कर चले तो नाडीकी गतिको जानने वाले मुनियोंके मतसे उसे असाध्य नाडी समझे। याने यदि ये सब गतियाँ हों तो रोग असाध्य होता है ॥ ३४ ॥

मृत्युकालज्ञानम्—

भूलताभुजगाकारा नाडी देहस्य संक्रमात् ।

विशीर्णे क्षीणतां (१) याति मासान्ते मरणं ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

यदि पुराना रोगी बहुत क्षीण हो जाय अथवा किसी कारणसे मोटा हो जाय और उसकी नाड़ी पतली हो तो केंचुवेकी तरह चिकनी, धीर तथा वक्र गतिसे, मोटा हो तो सर्पके जैसी कठिन, मोटी, तेज तथा वक्रगतिसे चलती हुई, क्षीण याने सूक्ष्म या अदृश्य हो जाय तो जिस दिनसे ऐसा हो उस दिनसे एक महीनेके अन्तमें याने दूसरे महीनेमें उसकी मृत्यु निश्चित ही है ॥ ३५ ॥

क्षणाद् गच्छति वेगेन शान्ततां लभते क्षणात् ।
सप्ताहान्मरणं तस्य यद्यङ्गं शोथवर्जितम् ॥ ३६ ॥

जब रोगकी नाडी कुछ क्षण तो बड़े जोरसे चले पर शीघ्र ही शान्त हो जाय याने मालूम न पड़े और यदि रोगीके शरीरमें सूजन न हो तो सातवें दिन उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि शरीरमें शोथ हो तो ऐसा नहीं होता ॥ ३६ ॥

हिमवद्विशदा नाडी ज्वरदाहेन तापिनाम् ।
त्रिदोषस्पर्शभजतां तदा मृत्युर्दिनत्रयात् ॥ ३७ ॥

सन्निपातसे पीडित मनुष्यका शरीर यदि उस ज्वरकी गरमीसे व्याकुल हो तथा ऐसी हालतमें उसकी नाडी ठंढी होकर साफ मालूम पड़ती हो तो उसकी मृत्यु तीसरे दिन होती है ॥ ३७ ॥

निरीक्ष्या दक्षिणे पादे तथा चैषां विशेषतः ।
मुखे नाडी वहेन्नित्यं ततस्तु दिनतुर्यकम् ॥ ३८ ॥

असाध्य नाडियोंको दाहिने हाथमें तो देखे ही, पर दाहिने पैरमें भी देखे, स्त्रियों के बाएँ हाथ-पैरमें देखे। यदि दोनोंकी गति (विकृत गति) एकसी हो तो कथित समय में अवश्य ही मृत्यु होगी। यदि नाडी हाथ तथा पांव दोनोंमें ही मुख में याने पहली (तर्जनी) अङ्गुलीके नीचे हमेशा ही फड़कती हो तो चौथे ही दिन मृत्यु हो जाती है। अथवा यों समझिये कि यदि नाडी याने श्वास मुखसे ही चलती हो, नाकसे नहीं, तो चौथे दिन मृत्यु होगी ॥ ३८ ॥

गतिं भ्रमरकस्यैव वहेदेकदिनेन तु ॥ ३९ ॥

यदि नाडी भौंरेकी सी चालसे चले याने दो-तीन दफे तेजीसे फड़के और गाय हो जाय, फिर थोड़ी ही देरमें ऐसी चाल चले तो एक दिनमें मृत्यु होती है ॥ ३९ ॥

---

(१) 'अक्षीणताम्' इति पाठान्तरम्। ऐसा हो तो मतलब यह कि शरीर क्षीण होने पर भी यदि नाडी उसकी अपेक्षा क्षीण न होकर चले तो मासान्त में मरण होगा।

कन्दे न (१) स्पन्दते नित्यं पुनर्लगति चाङ्गुलौ (२) ।
मध्ये द्वादशयामानां मृत्युरेव न संशयः (३) ॥ ४० ॥

यदि नाडी कन्द याने मूल अर्थात् अंगूठेकी जड़में प्रायः फड़के ही नहीं कभी सूक्ष्मभावसे फड़क भी जाय तथा फिर कभी-कभी अंगूठेकी जड़में हो बलवती बहने लगे तो बारह पहर में मृत्यु हो जायगी । इसमें कोई शक नहीं ॥ ४० ॥

स्थित्वा स्थित्वा (४) मुखे यस्य विद्युद्द्योत इवेक्ष्यते ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

जिसकी नाडी रह रह कर मुख याने अंगूठेके मूलमें तर्जनीके नीचे-बिजली की झलक जैसी फुर्तीके साथ फड़क जाया करती हो, उसकी आयु एक दिनकी समझो, दूसरे दिन वह मर जायगा ।

(पाठान्तरसे यह भी मतलब आता है कि यदि नाडी स्थिर हो और मुँह पर, चेहरे पर बिजलीकी जैसी दमक दिखाई दे तो वह एक दिनके बाद मर जायगा)॥४१॥

स्वस्थानविच्युता नाडी यदा वहति वा न वा ।
ज्वाला च हृदये तीव्रा (५) तदा ज्वालाऽवधिस्थितिः ॥४२॥

यदि नाडी अपने स्थान अङ्गुष्ठमूलसे खिसक गई हो और कुछ-कुछ देरमें बहती हो या न बहती हो तथा हृदयमें बड़ी तेज जलन हो तो जब तक जलन है तब तक स्थिति भी है ज्वाला शान्त होते ही रोगी मर जायगा ॥ ४२ ॥

अङ्गुष्ठमूलतो बाह्येद्व्यङ्गुले यदि नाडिका ।
प्रहरार्द्धाद् बहिर्मृत्युंजानीयाच्च विचक्षणः ॥ ४३ ॥

अंगूठेकी जड़से लेकर दो अङ्गुल जगह छोड़ यदि नाडी फड़के याने अंगूठेसे लेकर दो अंगुलके मध्यमें न फड़के तीसरे अंगुल—अनामिकाके नीचे फड़का करे तो बुद्धिमान् पुरुष जान ले कि मृत्यु आधे पहर बाद हो जायगी ॥ ४३ ॥

द्व्यङ्गुलाद्बाह्यतो नाडी मध्ये रेखा बहिर्यदि ।
सार्द्धप्रहरकान्मृत्युर्जायते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

यदि नाडी अंगूठे की जड़से एक अंगुल याने तर्जनी छोड़ मध्यमा और अना-

(१) 'स्वल्पेव' इति पाठान्तरम् । (२) 'नाङ्गुलौ' इति पाठान्तरम् ।
(३) 'मृत्युर्भवति निश्चितम्' इति वा पाठः ।
(४) 'स्थित्वा नाडी, स्थिरा नाडी' इति वा पाठान्तरम् ।
(५) 'अतीव' इति पाठान्तरम् ।

मिकाके मध्यमें लकीर-सी लम्बी होकर बहे तो डेढ़ पहरके बाद मृत्यु हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

मध्ये रेखासमा नाडी यदा तिष्ठति निश्चला ।
वड्मिश्च प्रहरैस्तस्य ज्ञेयो मृत्युर्विचक्षणैः ॥ ४५ ॥

यदि नाडी अंगूठेकी जड़से दो अंगुल जगहमें याने मध्यमा तथा तर्जनीके नीचे लकीरसी लम्बी चलती हुई बारम्बार कुछ क्षणके लिये बन्द हो जाया करे तो छः पहरके अन्दर उसकी मृत्यु समझे ॥ ४५ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी चञ्चला यदि तिष्ठति ।
त्रिभिस्तु दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ ४६ ॥

यदि नाड़ी अंगूठेकी जड़से सवा अङ्गुल हट जाय याने तर्जनी तथा मध्यमा के चतुर्थांशमें न लगे अथवा यों अर्थ कीजिये कि तर्जनीके ही चतुर्थांशमें न लगे और चञ्चल याने तेज चालसे चलती रहे तो समझ ले कि तीन दिनमें उसका मरण निश्चित है; इसमें सन्देह नहीं ॥ ४६ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी कोष्णा वेगवती भवेत् ।
चतुर्भिर्दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ ४७ ॥

पादाङ्गुल याने सवा अंगुल या पाव अङ्गुल खिसक कर चलने वाली नाड़ी यदि कुछ गरमी लेकर तेजी के साथ चले तो उस मनुष्य की मृत्यु, बिना किसी सन्देह के चौथे दिन हो जायगी ॥ ४७ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी मन्दमन्दा यदा भवेत् ।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा ॥ ४८ ॥

यदि पादांगुलगता नाडी मन्दी-मन्दी चालसे चले तो पांचवें दिन उसकी मृत्यु हो जायगी, इसमें अन्यथा न होगा ॥ ४८ ॥

एवं संख्यादिभेदेन नाडी ज्ञेया विचक्षणैः ।
स्वर्गेऽपि दुर्लभा विद्या गोपनीया प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार संख्यादि भेदसे याने रोगीकी मृत्यु अर्ध प्रहर, तीन दिन, एक मास आदिमें होगी, इसी प्रकार भेदसे बुद्धिमान् लोग इस नाडीको जानते हैं । यह नाडीविद्या स्वर्गमें भी मुश्किलसे मिलती है, अतएव इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखे—किसी अयोग्य पुरुषको न सिखावे । अयोग्य पुरुषोंको न देना ही गुप्त रखने का अर्थ है; क्योंकि गुरुसे पढ़कर जो मनुष्य योग्य शिष्यको विद्यादान

नहीं देता वह गुरुका ऋणी और महापापी होता है ॥ ४९ ॥

असाध्यवल्लक्षितायामपि साध्यत्वम्—

भारप्रवाहमूर्च्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी(१)।
सम्मूर्च्छिताऽपि गाढं पुनरपि सा जीवितं धत्ते ॥ ५० ॥

निरन्तर बोझ आदि ढोना, बेहोशी, भय, शोक आदि कारणोंसे यदि नाडी सूक्ष्म हो गई हो अथवा जड़ हो गई हो याने न फड़कती हो, तो भी वह मनुष्य फिर जीता है। ऐसी हालतमें इसे असाध्य न समझे। (अजीर्ण, वातरोग, व्यायाम, मैथुन तथा श्रम आदिसे भी कभी-कभी नाडी रुक जाती है। इसे भी मृत्युका कारण न समझ बैठे) ॥ ५० ॥

पतितः संधितो भेदी नष्टशुक्रश्च यो भवेत्।
शाम्यते विस्मयस्तस्य न किञ्चिन्मृत्युकारणम् ॥ ५१ ॥

जो ऊँचे स्थान आदिसे गिर पड़ा हो, जिसकी टूटी हड्डी आदि संधित की गई हो, जो भेदी हो याने जिसे अतिसार हो या अधिक जुलाब लग गया हो, तथा जिसका वीर्य अति क्षीण हो गया हो, ऐसे लोगों की नाडी यदि न भी फड़के तो उसे मृत्युका कारण न समझे—यह मरण को जताने वाली नहीं है ॥ ५१ ॥

निष्पन्दनाड्यामपि मृत्योरपवादः—

तथा भूताभिषङ्गे (२) च त्रिदोषवदुपस्थिता।
यद्यकस्मात्तथा नाडी न तदा मृत्युकारणम् ॥ ५२ ॥

जब भूत, प्रेत या देवग्रह आदि लगे हुए हों, उस समय यदि नाडी त्रिदोष याने सन्निपात की जैसी होकर चलने लगे याने सन्निपात में असाध्यता या मृत्यु जताने वाली नाडी-जैसी गतिवाली हो जाय, तब भी वह मृत्युका कारण नहीं होती—रोग मरता नहीं है ॥ ५२ ॥

समाङ्गा (३) वहते नाडी तथा च न क्रमं गता।
अपमृत्युर्न रोगाङ्गा (४) नाडी तत्सन्निपातवत् ॥ ५३ ॥

भूतादिकों के लगनेसे यद्यपि नाडी सन्निपातकी जैसी चाल चलती है, तो भी वह विषम भावसे तथा क्रम छोड़कर नहीं चलती याने सम भाव से उचित स्थान में

(१) 'भार' इत्यत्र 'भाव' 'प्रमुख' इत्यत्र 'समुत्थ' इति च पाठान्तरम्।
(२) 'भूतादावभिषङ्गे' इति पाठान्तरम्। (३) 'समं या' इति वा पाठः।
(४) 'अरोगाङ्गा' इति पाठान्तरम्।

ही वातादि रूपसे फड़कती है, इसलिये यह नाड़ी अपमृत्यु तथा शरीरके रोगी होने की सूचना नहीं देती, अर्थात् इसमें शरीरमें कोई कठिन रोग आदिके होनेकी तथा अपमृत्यु होनेकी शंका नहीं होती ॥ ५३ ॥

स्वस्थानहीने शोके च हिमाऽऽक्रान्ते च निर्गदाः (१)।
भवन्ति निश्चला नाड्यो न किञ्चित्तत्र दूषणम् ॥ ५४ ॥

स्वस्थानसे च्युत होने पर याने हठात् किसी ऊँचे, स्थान या हाथी, घोड़े आदि की सवारी परसे गिर पड़ने पर अथवा किसी कदर अकस्मात् ऊपर उछाल दिये जाने पर, धन-पुत्रादि वियोगसे शोक होने पर, तथा शरीर ठण्डसे अति-आक्रान्त होने पर याने ठंडसे शरीर के अकड़ जाने पर, नाड़ी विना कोई बीमारी आदि के भी फड़कना बन्द कर देती है। ऐसी हालतमें इससे कोई भय नहीं करना चाहिये। यह कोई असाध्य या मृत्युसूचक नाड़ी नहीं है ॥ ५४ ॥

स्तोकं वातकफं दुष्टं पित्तं वहति दारुणम्।
पित्तस्थानं विजानीयाद् भेषजं तस्य कारयेत् ॥ ५५ ॥

यदि वात तथा कफ कम दूषित हों और पित अति दुष्ट हो गया हो, तो वात-कफकी नाड़ी कम तथा पित्तकी नाड़ी प्रबल वेगसे चलती है और वात-कफकी नाड़ी अप्रधान होनेकी वजहसे प्रबल वेग वाली पित्तकी नाड़ी पहले ही मालूम पड़ती है। इसे पहले पित्त, फिर वात तथा कफकी गतिवाली सन्निपातकी असाध्य नाड़ी न समझ बैठें। इससे पित्तकी प्रबलता ही जान इसकी चिकित्सा करे। दोनोंमें अन्तर यह है कि सन्निपातकी असाध्य नाड़ीमें पित्त, वात तथा कफके क्रमसे तीनों नाड़ियाँ समान वेगसे चलती हैं, पर इसमें केवल पित्तकी नीड़ी ही प्रबल वेग वाली होती है; वात तथा कफकी नाड़ी कम वेगकी होती है ॥ ५५ ॥

स्वस्थानच्यवनं यावद् धमन्या नोपजायते।
तदा तच्चिह्नसत्त्वेऽपि (२) नासाध्यत्वमिति स्थितिः ॥ ५६ ॥

जब तक नाड़ी अपने स्थान (अंगुष्ठमूल) से न हट जाय याने जब तक नाड़ी अंगूठेकी जड़में लगती रहे, तब तक अन्यान्य असाध्य लक्षणोंके उपस्थित होने पर भी उसे असाध्य न समझे। यही नियम है। कारण यह, कि यही नाड़ी जीव की साक्षिणी है तथा अनेक समयपर नाड़ी न होनेपर भी रोगी पुनः जीवन

(१) 'हिमाक्रान्ते च निर्गता' इति पाठान्तरम्। (२) 'तस्य चिह्नस्य' इति पाठान्तरम्।

लाभ करता है। इसलिए जब तक प्राण बिलकुल चले न जांय, तब तक चिकित्सा करता रहे ॥ ५६ ॥

मृत्युभयापवादः—

न विमुञ्चति स्वस्थानं नाडी सूक्ष्मा विभाव्यते।
तस्य मृत्युभयं नास्ति व्याधिरप्युपशाम्यति ॥ ५७ ॥

यदि नाडी अति पतली हो गई हो याने तन्तु के समान मालूम पड़ती हो, फिर भी अपने स्थान याने अंगूठे की जड़ को न छोडे—बराबर लगती रहे, तो उससे मरने का कोई डर नहीं रहता, किन्तु रोग ही शान्त होता है, क्योंकि नाड़ी के न छूटने से प्राण जाने का डर तो नहीं रहता और जब प्राण ही न जाँयगे, तो चिकित्सा करने पर साध्य रोग निश्चय ही धीरे-धीरे शान्त हो जावगा ॥ ५७ ॥

स्वस्थनाडीलक्षणम्—

सुव्यक्तता निर्मलत्वं स्वस्थानस्थितिरेव च।
अचाञ्चल्यममन्दत्वं सर्वासां शुभलक्षणम् ॥ ५८ ॥

बीमारीमें जब क्रमशः दोषों का क्षय होकर मनुष्य स्वास्थ्य लाभ करता है तो नाड़ी भी, क्रमसे साफ मालूम पड़ना (छूने से), निर्मल याने वातादि तथा अन्यान्य दोषों से मुक्त होना, अपने स्थान याने अंगुष्ठमूल में फड़कना, अधिक तेज न होना तथा अधिक धीरे न चलना इन लक्षणों को धारण करती है। ये सब लक्षण शुभ याने आरोग्य को देने वाले हैं। मतलब यह, कि सन्निपात आदि किसी रोगमें, जब नाड़ी इन लक्षणोंकी धारण करने लगे तब वैद्य समझ ले कि रोग शीघ्र ही नाश होकर रोगी चङ्गा होने वाला है ॥ ५८ ॥

दुष्टनाडीलक्षणम्—

रक्तं वमति सूक्ष्मत्वं स्वस्थानस्य विमोक्षणम्।
चाञ्चल्यं दोषपूर्णत्वं काठिन्यमतिमन्दता।
स्तैमित्यं गतिकौटिल्यं सर्वासां दुष्टलक्षणम् ॥ ५९ ॥

नाड़ियोंका ऐसा रक्तपूर्ण होकर चलना जैसे खून उगलती हों या शिरामुखोंसे (ऊपर तथा नीचेके छिद्रोंसे तथा रोमकूपोंसे) रक्त निकलना, सूक्ष्म याने बिलकुल तन्तुके समान मालूम पड़ना, अपने स्थान अंगुष्ठमूलको छोड़ कर खिसक जाना, अधिक तेजीसे चलना, वातादि दोषोंसे पूर्ण रहना, कठिन याने छूने पर कड़ा मालूम होना, अधिक मन्दी चालसे चलना, पानीसे लथपथ हुए की

जैसी ढीली-ढाली चाल से चलना, कुटिलताके साथ याने तेड़े तिरछे चलना ये सब शिराओं के बात, पित्त, कफ तथा रक्तादि द्वारा दूषित होने के लक्षण हैं याने इनसे दूषित होने पर नाड़ियों में ये लक्षण प्रकट होते हैं ॥ ५९ ॥

सुखसाध्या नाडी—

यदायं धातुमाप्नोति तदा नाडी तथागतिः।
तदा हि सुखसाध्यत्वं नाडीज्ञानेन बुध्यते ॥ ६० ॥

स्वभाव से ही नाडी जिस समय जिस धातुको प्राप्त हो, जैसे सुबह, दोपहर, शाम या भोजग के आदि, जीर्ण होने के समय तथा हजम होने के बाद, स्वभाव से ही वात, पित्त, तथा कफ का क्रमसे प्राबल्य होता है, उसी समय उस धातु की गति याने जब बातका समय हो तो बात की गति, उसी प्रकार पित्त तथा कफ की गति वाली हो, तो रोगीकी सुखसाध्यता होती है याने बिना कोई तकलीफ के रोगी आराम हो जाता है। यही नाड़ी-ज्ञानसे जाना जाता हैं ॥ ६० ॥

नाडी यथाकालगतिस्त्रयाणां प्रकोपशान्त्यादिभिरेव भूयः ॥ ६१ ॥

जिस क्रमसे वात-पित्त-कफका संचय, कोप तथा शान्ति होती है, उसी क्रमसे यदि नाडी की गति हो याने (शीत, ग्रीष्म,वर्षा, पूर्वाह्न, मध्याह्न, शाम, रातका पूर्व भाग, मध्य रात्रि तथा रातका अन्तिम भाग; एवं भोजनके समय, जीर्ण होने के समय एवं जीर्ण होने के बाद, बात, पित्त तथा कफका क्रमसे कोप होता है।) जिस दोष के कुपित होनेके कालमें यदि ठीक उसीकी गति को लेकर नाडी चलती हो, तो रोगको सुखसाध्य समझे ॥ ६१ ॥

द्रव्यविशेषभक्षणे नाडीगतिः—

पुष्टिस्तैलगुडाहारे मांसे च लगुडाकृतिः।
क्षीरे च स्तिमिता वेगा मधुरे भेकवद् गतिः ॥ ६२ ॥

तैल आदि चिकनाइयों के तथा गुड़ और गुड़ जैसे रस वाले अन्य पदार्थोंके भी भोजनसे नाडी पुष्ट होकर याने मोटी होकर चलती है। मांस के भोजन से नाडी डंडे की जैसी याने मोटी तथा कड़ी होकर चलती है, तथा मीठे पदार्थों के खाने से नाडी की चाल मेढ़क की जैसी हो जाती है, कारण अधिक खाने से मीठे पदार्थोंका पाक खट्टा हो जाता है, इसलिये पित्त कुपित हो जाने से नाडी की चाल मेढक की सी हो जाती है। ये सब चालें अधिक खाने पर हैं; क्योंकि उचित मात्रा में खाने पर पदार्थ विकार नहीं करते। विकार न करने से नाड़ी की गति स्वभाविक होती है ॥

रम्भागुडवटाहारे रूक्षशुष्कादिभोजने ।
वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति निष्क्रमम् ॥ ६३ ॥

केला तथा गुड के भोजन करनेसे, बड़ों के (उड़द आदि के) खाने से तथा रूखा-जैसे भुने चने आदि, सूखा-जैसे चिउड़ा आदिके खानेसे नाडी बात तथा पित्त के कोप में जैसे चलती है, उसी प्रकार की गति वाली हो जाती हैं, पर इसमें क्रम नहीं होता याने पहले वात फिर पित्त कभी पहले पित्त फिर बात, ऐसा क्रम-विपर्यय से गति करती है ॥ ६३ ॥

रसविशेषभोजने नाडीगतिः—

मधुरे बर्हिगमना तिक्ते स्याद् भूलतागतिः ।
अम्ले कोष्णा प्लवगतिः कटुके भङ्गसन्निभा ॥ ६४ ॥

मधुर रसके अधिक खाने से नाडीकी गति मोरकी जैसी हो जाती है, क्योंकि मधुर रस से कफ कुपित होता है, तिक्त रसके अधिक भोजन से नाडी की गति केंचुएकी जैसी होती है, कारण तिक्तरस से वात कुपित होता है खट्टे रस के भोजन से कुछ गरम होकर नाड़ी कूदती हुई चलती है; क्योंकि अम्ल रस से पित्त कुपित होता है; कड़वे रस के सेवन से नाडी कुलिंग पक्षीकी जैसी गति वाली होती है; क्योंकि इससे वातकी वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥

कषाये कठिना म्लाना लवणे सरला द्रुता ।
एवं द्वित्रिचतुर्योगे नानाधर्मवती धरा ॥ ६५ ॥ ६५ ॥

कषाय रसके सेवनसे नाडी कठिन याने छूने में कडी तथा जड़ होकर चलती है, नमकके अधिक खानेपर नाडी सरल याने सीधी और जल्दी-जल्दी चलती है, इस प्रकार दो, तीन, आदि रसों का मिश्रण सेवन करनेपर नाड़ी भी अनेक तरह की गतिवाली हो जाती है ॥ ६५ ॥

रसानां शमनकोपनत्वम्—

स्वाद्वम्ललवणा वायुं कषायस्वादुतिक्तकाः ।
जयन्ति पित्तं श्लेष्माणं कषायकटुतिक्तकाः ॥ ६६ ॥

मीठा खट्टा, और नमकीन रस वात की शांति करते हैं, कषाय, मीठा तथा तिक्त रस पित्तकी शान्ति करते हैं एवं कषाय, कटु तथा तिक्त रस कफकी शान्ति करते हैं ॥ ६६ ॥

कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्ललवणाः कफम् ।
कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ॥ ६७ ॥

कडवा, खट्टा और नमकीन, ये रस पित्तको कुपित करते हैं; मीठा, खट्टा और नमकीन रस कफको कुपित करते हैं; तथा तीता, कड़वा और कसैला रस वायु को कुपित करते हैं ॥ ६७ ॥

प्रसङ्गवशात रसानां विपाकमाह—

ककुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ।
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरो लवणस्तथा ॥ ६८ ॥

तीते, कडवे तथा कसैले पदार्थों का विपाक प्रायः तीता होता है, खट्टे रस का विपाक खट्टा ही होता है तथा मीठे और नमकीन चीजोंका विपाक प्रायः मीठा ही होता हैं । प्रायः कहनेका मतलब यह कि इससे कभी कभी विपरीत या अन्यथा भी हो जाता है ॥ ६८ ॥

मधुरो लवणोऽम्लश्च स्निग्धभावास्त्रयो रसाः ।
वातमूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखा मताः ॥ ६९ ॥

मधुर, लवण और खट्टा, ये तीन रस चिकने होनेकी वजहसे वायु, मूत्र और मलको बाहर निकालनेमें सरलता लाने वाले है । कारण यह, कि जो चिकना होगा वह वातानुलोमन करेगा तथा कोठेकी चिकनाहट होनेकी वजहसे वायु, मूत्र तथा मल आदि कोठेमें न रह कर सुखपूर्वक बाहर निकल जायेंगे ॥ ६९ ॥

कटुतिक्तकषायाश्च रूक्षभावास्त्रयो रसाः ।
दुःखानि मोक्षे दृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ७० ॥

तीता, कड़वा और कसैला, ये तीन रस रूखे होनेसे वातका कोपन कर विष्टम्भ आदि करने के कारण वायु, मल, मूत्र तथा वीर्यके बाहर निकलनेमें दुःखदायी होते हैं याने इन्हें बाहर निकलनेसे रोकते हैं ॥ ७० ॥

प्रसङ्गवशात् द्रव्याणामपि रसधर्मत्वमाह—

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णात् शालियवादृते ।
मुद्गाद् गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गलामिषात् ॥ ७१ ॥

पुराने शालि चावल तथा पुराने जौ के सिवाय अन्यान्य मधुर रस वाले द्रव्य प्रायः कफकारक होते हैं, तथा पुराने मूंग, पुराना गेहूं, शहद, शक्कर तथा जङ्गल जीवों के मांस भी कफकारक नहीं होते ॥ ७१ ॥

(U. G. C. Book Bank)

प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ॥ ७२ ॥

अनार और आमलेके सिवाय अन्यान्य खट्टे रस वाले पदार्थ प्रायः पित्त-कारक होते हैं। अनार और आमले खट्टे होने पर भी शीतबीर्य वाले हैं, इससे पित्तकारक नहीं होते। प्रायः शब्दके कहनेसे कोई पदार्थ पित्तकारक नहीं भी होते ऐसा अर्थ निकलता है ॥ ७२ ॥

द्रवेऽतिकठिना नाडी कोमला कठिनाशने।
द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये कोमला कठिनाऽपि च ॥ ७३ ॥

तरल पदार्थों के भोजन करने पर नाडी कठिन होकर याने डंडे जैसी मोटी तथा कड़ी होकर चलती है। कड़े पदार्थ जैसे लड्डू आदि के भोजन करने पर नाडी छूने पर गुदगुदी मालूम होती हुई चलती है। यदि द्रव्य पदार्थ किसी प्रकार जमा कर कठिन कर दिया जाय तो उसके भोजन करने पर नाड़ी कभी तो कोमल और कभी कठिन मालूम होती है या यों समझिये कि कोमल भी मालूम पड़ती है और कठिन भी, जैसे बाहर से कुछ भीगा हुआ मिट्टी का सूखा ढेला पहले तो कोमल मालूम पड़ता है फिर दबानेसे कठिन। ऐसी ही नाड़ीको भी जानिये ॥ ७३ ॥

अम्लैश्च मधुराम्लैश्च नाडी शीता विशेषतः।
चिपिटैर्भृष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मन्दतरा भवेत् ॥ ७४ ॥

खट्टे पदार्थ के खानेसे (यहां खट्टे पदार्थ कहने से शीतवीर्य वाले अनार आमलादि को ही लेना चाहिये, क्योंकि ये शीतवीर्य होने के कारण नाड़ी पर भी शीत प्रभाव डालते हैं, अन्यथा खट्टे रस से पित्त कुपित होकर नाड़ी की गति गरम तथा तेज हो जायगी) तथा खट्मिट्ठे पदार्थों के खानेसे नाड़ी खासकर ठंडी मालूम पड़ती है। चिउड़ा और भुने हुए द्रव्य, जैसे चना आदि के भक्षण करने से नाड़ी की गति स्थिर तथा बहुत मन्दी होती है ॥ ७४ ॥

कुष्माण्डैर्मूलकैश्चैव मन्दा मन्दा च नाडिका।
शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपूर्णेव नाडिका ॥ ७५ ॥

पेठा तथा मूली के भक्षण करने पर नाडी की चाल मन्दी-मन्दी सी हो जाती है तथा शाक याने पत्र, पुष्प, फल, नाल, कन्द तथा संस्वेदज, इन छः प्रकारों में किसी के, तथा केले के फल के भक्षण से नाड़ी रक्तपूर्ण जैसी चलती है, याने ऐसा मालूम पड़ती है मानों नाड़ियों में खून पूरा भरा हुआ है ॥ ७५ ॥

मांसात् स्थिरवहा नाडी दुग्धे शीता बलीयसी।
गुडैः क्षीरैश्च पिष्टैश्च स्थिरा मन्दवहा भवेत् ॥ ७६ ॥

मांसके भक्षण करनेसे नाडी स्थिरता लेकर चलती है याने न मन्द रहती है और न चञ्चल तथा गति एक-सी हो जाती है याने धीर स्थिरभावसे एक-सी चाल चलती रहती है। दूधके भोजनमें नाडी शीतस्पर्श लेकर बलवती होकर चलती है अर्थात् गतिमें तेजी न होनेपर भी जड़ता नहीं होती। गुड़, दूध तथा पीठी आदिके भक्षण से नाडीकी गति स्थिर और मन्दी होती है। पहले मांस भक्षणसे नाडीका डंडे जैसी होना कह आये हैं, यहाँ फिर स्थिरवहा कहनेका अर्थ यह, कि नाड़ी डंडे जैसी होने पर भी स्थिर याने अचञ्चल होती है। दूधके भोजनसे स्तिमित वेग वाली, शीता, बलीयसी तथा स्थिर मन्दवहा, ये तीन भिन्न भिन्न गतियोंके कहनेसे दूधके भिन्न-भिन्न अवस्था तथा गौरवादिके अनुसार ही समझना चाहिये, जैसे—धारोष्ण दूध के पीने पर सद्योबलकर होनेके कारण नाडी की गति शीत व बलवती हुई, विना गरम किया ठंडा दूध पिया तो शीतल व कफकारक होनेसे नाडी स्तिमित वेगवाली हुई तथा अधोटा दूध पीनेसे भारी होने की वजह से नाडीकी गति स्थिर तथा मन्द हुई, आदि ॥ ७६ ॥

गुडरम्भामांसरूक्षशुष्कतीक्ष्णादिभोजनात्।
वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति (१) निश्चला ॥ ७७ ॥

गुड़, केलेका फल, मांस, रूखा पदार्थ जैसे भुने चने या अन्यान्य भुने द्रव्य, सूखे पदार्थ जैसे चिउड़ा आदि, तीक्ष्ण जैसे सरसों, अदरक आदि द्रव्योंके अकेले या दो तीन द्रव्य मिला कर खानेसे नाडी वात-पित्तके प्रकोपकी जैसी गति वाली हो जाती है याने कभी टेढ़ी कभी तिरछी, कूदती हुई चलती हैं तथा इनमें चञ्चलता अधिक होती है ॥ ७७ ॥

अम्लेऽपि हृद्यसुस्थत्वे भवन्ति तापिताः शिराः ॥ ७८ ॥

खट्टे पदार्थोंके भोजन करने पर यदि हृदयमें जलन आदि पैदा हो जाय तो (अपि कहनेसे यदि न भी होय तो भी) नाडियाँ गरम होजाती है। इसमें अनार आदि पित्तको कुपित न करने वाले पदार्थों को छोड़ अन्य खट्टे पदार्थ ही समझना चाहिये, क्योंकि विना पित्तके कोपके नाडी गरम नहीं होती। यदि हृदयमें जलन आदि न हो तो कम, और हो तो अधिक गरमी नाड़ियोंमें होगी, यह भी समझना

(१) निष्क्रमम्' इति पाठान्तरम्।

चाहिये अथवा यों समझिये कि अम्ल रसके हृद्य और सुस्थ याने अविकारी मात्रामें भोजन करने पर भी नाडी गरम चलती है ॥ ७८ ॥

प्रातरादौ सुस्थनाडीगतिमाह—

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता ।
सायाह्ने धावमाना च रात्रौ वेगविवर्जिता ।
प्रकृतिस्था च सा नाडी सदा ज्ञेया भिषग्वरैः ॥ ७९ ॥

सुबहके समय स्वभावसे ही कफका प्राबल्य होनेसे नाडी स्निग्ध याने अचञ्चल तथा स्थिर गतिवाली, दोपहरको स्वभावतः ही पित्त प्रबल होनेसे गरम तथा शामको वायुका प्राबल्य होने की वजहसे दौड़ती हुई होती है। रातको स्वभावसे ही दिनकी अपेक्षा गरमी कम रहती है, सब इन्द्रियाँ आराम करती हैं तथा मनुष्य भी उत्तेजना आदिसे दूर रहता है, इस कारण नाडीकी गति प्रहरादि भेदसे स्निग्ध, उष्ण तथा दौड़ती हुई होने पर भी दिनकी अपेक्षा वेगहीना होती है। यही स्वस्थ याने रोग आदिसे रहित पुरुषोंकी नाडीकी गति है अर्थात् ऐसी गति देख वैद्यवर समझे कि पुरुष नीरोग अवस्था में है ॥ ७९ ॥

ज्वरपूर्वरूपे नाडीगतिः—

अङ्गग्रहेण नाडीनां जायन्ते मन्थराः प्लवाः ।
प्लवः प्रबलतां याति ज्वरदाहाभिभूतये ॥ ८० ॥

यदि ज्वर होने वाला हो और उसके पूर्वरूप में अङ्गग्रह याने शरीर में फूटन आदि पीड़ा हो, तो नाडी मन्द भावसे कूद-कूद कर चलती है और यदि ज्वर तथा साथमें दाह भी होने वाला हो, नाडीकी यह गति प्रबल वेग धारण करती है याने तेजीके साथ मेढक आदिकी तरह कूद-कूद कर चलती है। ऐसी गतिको देख कर समझ लेना चाहिये कि दाहज्वर होनेवाला है। ज्वरपूर्वरूप में इस गति के होनेका कारण यह है, कि गरमी के विना ज्वर नहीं होता तथा पित्त के बिना गरमी नहीं होती, इससे चाहे जिस दोषसे भी क्यों न हुआ हो ज्वरमें पित्तका कोप रहता ही है; इसलिये नाडी भी पित्तकी जैसी कूद-कूदकर चलती है। कहा भी है—'ज्वरके कोपमें नाडी गरम तथा तेज रहती है' ॥ ८० ॥

सान्निपातिकपूर्वरूपे नाडी—

सान्निपातिकरूपेण भवन्ति सर्ववेदनाः ॥ ८१ ॥

यदि सन्निपातज्वर होनेवाला हो तो नाडीमें सब प्रकारकी चालें प्रकट होती हैं।

याने नाडी कभी सांपकी तरह टेढ़ी-तिरछी, कभी मेंढक या कौवेकी तरह कूदती हुई, कभी हंस मोर आदिकी तरह धीर स्थिर गतिसे, कभी लवा तीतर आदिकी तरह तिरछी चालसे गति करती है। मतलब यह कि नाडी तीनों दोषोंकी चालोंको उल्वणताके अनुसार कम अधिक भावसे धारण करती है ॥ ८१ ॥

ज्वरकेप्रकोपे(१) तु धमनी सोष्मा वेगवती भवेत् ॥ ८२ ॥

ज्वरके प्रकोपमें याने ज्वरके शरीरमें प्रकट होने पर, नाडी गरम तथा तेज गतिवाली हो जाती है, क्योंकि ज्वरमात्रमें ही पित्तका सम्बन्ध रहता है जो पिछली व्याख्यामें दिखा आये हैं। पित्तकारक आहारादि नाडी गति से इसका भेद यह है कि खट्टे आदि पित्तकारक पदार्थ खानेसे नाडी 'कोष्णा प्लवगतिः' होती है याने कुछ गरमी लिये कूदती हुई चलती है, पर ज्वरमें वही गति होने पर भी अधिक गरम और अधिक तेज होती है ॥ ८२ ॥

वातोल्वणज्वरे नाडी—

ज्वरे वक्रञ्च(२) धावन्ति यथा च मारुतप्लवे ॥ ८३ ॥

यदि वातके कोपसे ज्वर हुआ हो तो नाडीकी गति ज्वरकी जैसी सामान्य याने गरम तेज होनेपर भी, वक्र याने टेढ़ी तिरछी जोंक सांप आदिकी जैसी होती है ॥८३॥

रमणान्ते नाडीगतिः—

रमणान्ते निशि प्रातस्तप्ता दीपशिखा यथा(३) ॥ ८४ ॥

स्त्रीप्रसङ्ग करनेके बाद अवशेष रात्रि तथा उस दिन सुबह भी नाडीकी गति दीपककी लौ जैसी गरम होती है। नाडी तो ज्वरमें भी गरम होती है पर भेद यह है, कि ज्वरमें गरम और वेगवती होती है इसमें दीपककी लौ की जैसी स्थिर गतिवाली होकर गरम होती है। अथवा यों समझिये कि जैसे दीपककी लौ स्थिर होनेपर भी आगे याने चोटीपर कुछ हिलती हुई-सी होती है, उसी तरह नाडी भी गरम तथा स्थिर होनेपर भी आगे याने तर्जनीके नीचे कुछ चंचल मालूम होती है ॥ ८४ ॥

समतीव्रवायौ नाडीगतिः—

साम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा ।

(१) 'ज्वरवेगे च' इति पाठान्तरम् । (२) 'बक्रा' इति वा पाठः ।
(३) 'दीपशिखोपमा' इति पाठान्तरम् ।

स्थूला च कठिना शीघ्रा स्पन्दते तीव्रमारुते ॥ ८५ ॥

सहज याने प्रकृतिगत वातमें नाडी मृदुस्पर्श वाली सूक्ष्म याने पतली स्थिर तथा मन्द गतिवाली होती है। ऊपर वातसे वक्र गतिका होना कह आये हैं और यहां पर ऐसा कहनेका मतलब यह है, कि वातनाडीकी गति सहज हो या कुपित, कुटिल होती ही है। सो स्वाभाविक वातवालेकी नाडी कुटिल होते हुए भी कोमल, सूक्ष्म, स्थिर तथा मन्द होती है। अथवा सहज का मतलब यह है, कि वातकारक आहार विहारके समय या ग्रीष्ममें जब वातका सञ्चय होता है, उस समय यदि कोई तीव्र तात्कालिक कारणसे वातज्वर हो जाय, तो नाडीकी गति ऐसी हो; तथा जब वायु प्रबल हो या वायुका कोप अधिक हो अथवा वर्षा ऋतुमें जब वातज्वर हो, तो नाडी दोषपूर्ण होनेके कारण मोटी तथा कुछ कठिन होकर अपनी वही कुटिल गतिसे जल्दी जल्दी फड़कती है ॥ ८५ ॥

भृता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत्।
शीघ्रमाहननं नाड्याः(१) काठिन्याच्च चला तथा(२)।
मलाजीर्णेन नितरां(३) स्पन्दनञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥ ८६ ॥

पित्तज्वरमें नाडी दोषसे भरी हुई सी सीधी रेखामें लम्बी होकर याने अनामिकासे लेकर तर्जनी तक जल्दी जल्दी फड़कती है तथा मलपूर्ण होनेसे कठिन होकर यों फड़कती है, मानों चमड़ेको फोड़कर नाड़ी बाहर निकल जाना चाहती हो। (कोइ टीकाकार महाशय यों अर्थ करते हैं, कि पहली पंक्ति में बताई गति उस पित्त ज्वरमें होती है जो पित्तके सञ्चयके समय याने वर्षा ऋतुमें किसी उग्र तात्कालिक कारणसे हो गई हो तथा शरद ऋतुके पित्तज्वरमें पित्तका स्वाभाविक ही प्रकोप रहनेकी वजहसे, नाडी दोषपूर्ण होकर कठिन हो फड़कती है।) मल याने साम पित्त ज्यों ज्यों जीर्ण याने पक्व होता जाता है, नाडी भी काठिन्यादि छोड़कर बारम्बार फुर्ती व हलकापन लेकर चलती है ॥ ८६ ॥

श्लेष्मा नाडी

नाडी तन्तुसमा मन्दा शीतला श्लेष्मकोपतः ॥ ८७ ॥

(१) 'शीघ्रमावहते नाडी' इति पाठान्तरम्। (२) 'काठिन्याच्चलते तथा' इति च पाठान्तरम्। (३) 'मलाजीर्णे नातितराम्' 'मलाजीर्णे च नितराम्' तथा 'दोषाजीर्णेन नितराम्' इति पाठान्तरत्रयम्।

कफके ज्वरमें चाहे वह सञ्चयके समयमें हो या कोपके समयमें हो, अति सूक्ष्म याने कमलके सूतके समान होकर मन्द गतिसे नाडी चलती है तथा स्पर्शमें शीतल मालूम पड़ती है। यहां शीतलका यह अर्थ है, कि वात या पित्त ज्वरकी अपेक्षा शीतल न कि बिलकुल, गरमीसे रहित, क्योंकि ज्वर होनेकी वजहसे नाडी गरम तो रहेगी ही ॥ ८७ ॥

वातपित्तजा नाडी—

चञ्चला तरला स्थूला कठिना वातपित्तजा ॥ ८८ ॥

वातपित्त—जनित ज्वरसे नाडी पित्तके कारण चञ्चल, वातके कारण तरल याने झूलती हुई अर्थात् कुछ टेढ़ी मेढ़ी सी होकर, दोष पूर्ण होनेकी वजहसे मोटी तथा कठिन सी होकर चलती है। वातकी गति टेढ़ी होने पर भी पित्तकी गति सीधी होनेसे नाड़ी अधिक वक्रगति नहीं करती ॥ ८८ ॥

वातश्लेष्मिकी नाडी—

ईषच्च दृश्यते तूष्णा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा।
निरन्तरं खरं रूक्षं मन्दश्लेष्माऽतिवातला ॥ ८९ ॥

वातकफ ज्वरमें यदि वात और कफ दोनों सम भावसे कुपित हों, तो नाडी किसी कदर गरम मालूम होती हुई मन्दी चाल याने मोर हंस आदिकी चालसे चलती है। वात तथा कफ दोनोंके ठण्डे प्रभाव वाले होनेपर भी नाडीका गरम होना ज्वरके कारण होता है। यदि इस ज्वरमें कफ मन्द हो तथा वायु प्रबल हो तो नाडी निरन्तर याने बिना चाल बदले बराबर ही खर याने तेज चालसे रूखी याने कर्कश होकर चलती है ॥ ८९ ॥

रूक्षवातजा नाडी—

रूक्षवातभवे तस्य नाडी स्यात् पिण्डसन्निभा(१) ॥ ९० ॥

यदि रूखे पदार्थोंके खाने पीनेसे वायु रूखा गुणको लेकर कुपित हो ज्वर उत्पन्न किया हो अर्थात् यदि रूक्ष वातज्वर हुआ हो, तो नाडी सिर्फ वातके कुपित रहनेसे अति कुटिल तथा रूखे गुणके कारण कर्कश होकर पिण्ड याने गोली सी या गांठ गांठ सी मालूम होती है ॥ ९० ॥

पित्तश्लेष्मजा नाडी—

सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी(२) पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ ९१ ॥

(१) 'पित्तसन्निभा' इति वा पाठः। (२) 'मन्दा' इति पाठान्तरम्।

पित्तकफ ज्वरमें नाडी सूक्ष्म याने पतली तथा ठण्डी होकर स्थिर याने अनुद्धत वेगसे चलती है। नाड़ीमें यह शीतता और स्थिरता शुद्ध पित्तजन्य ज्वरकी अपेक्षासे समझनी चाहिये, क्योंकि नाडी कभी कभी कुछ गरम तथा चपल गति भी पित्तके कारण करती है तथा शुद्ध कफजन्य ज्वरकी अपेक्षा कुछ उष्ण तथा चपल गति सी होती ही है ॥ ९१ ॥

रक्तपूर्ण-मलवती नाडी—

मध्ये करे वहेन्नाडी यदि सन्तापिता ध्रुवम्
तदा नूनं मनुष्याणां रुधिरापूरिता मलाः ॥ ९२ ॥

यदि ज्वरावस्थामें नाडी मध्यमा अङ्गुलिके नीचे गरम होकर चले तो निश्चय कर जाने कि वातादि दोष रक्तके साथ मिलकर पूर्ण हैं। यहां नाड़ी दोषपूर्ण होनेके कारण स्थूल तथा रक्तका भी पित्त जैसे कार्य होने से तेज गति भी समझनी चाहिये।

(ऊपर कही हुई सब गतियां ज्वरावस्थाके लिये कहे जानेपर भी अन्य अवस्थामें भी समझनी चाहिये, ऐसा किसी संस्कृत टीकाकारका मत है; तथा एक और टीकाकारका कहना है, कि ये सब गतियां सन्निपातमें दोषोंके तारतम्यके अनुसार होती हैं) ॥ ९२ ॥

कामादि-नाडीगतिः—

कामात् क्रोधाद् वेगवती क्षीणा चिन्ताभयाप्लुता(१) ॥ ९३ ॥

काम तथा क्रोधके कारणसे नाड़ी जल्दी जल्दी चलने लगती है तथा चिन्ता और भयसे यदि आप्लुत याने व्याप्त हुई तो क्षीण होकर गति करती है याने चिन्तित और भयभीत पुरुषोंकी नाड़ी क्षीण होती है।

भूतज्वरे नाडीगतिः—

भूतज्वरे सेक इवातिवेगा धावन्ति नाड्या हि यथाब्धिगामाः ॥ ९४ ॥

---

(१) 'कामात क्रोधात् वेगरोधात् क्षीणा चिन्ताधन प्लुतात्' इति पाठान्तरम्। यह पाठान्तर साधु मालूम नहीं होता, क्योंकि काम तथा क्रोध से वायु और पित्त का कुपित होना शास्त्रसम्मत है तथा वात में दौड़ती हुई और पित्त से वगवती नाड़ी पीछे कही हुई है। यद्यपि भय से भी वात का कोप लिखा है उसपर भी 'आप्लुत' शब्द से भयभीत अवस्था का ही ग्रहण होता है, वायु तो पीछे से अनुबन्ध होता है। टी० का०।

भूताभिषङ्ग याने भूतग्रह आदि के लगने से जो ज्वर होता है, उसमें नाडियां वर्षाकालके समुद्रगामिनी नदियों की तरह दौड़ती हुई चलती हैं, याने वर्षाकालमें जैसे नदियां पानीसे भरी हुई, किनारोंको डुबोती हुई, प्रबल वेगसे समुद्रकी ओर दौड़ती हुई जाती हैं, उसी तरह नाड़ी भी भरी हुई सी होकर, प्रबल वेगसे चलती है तथा ज्वर होनेके कारण गरमी भी ली हुई होती है, ऐसा समझना चाहिये।

विषमज्वरे नाडीगतिः—

ऐकाहिकेन क्वचन प्रदूरे क्षणान्तगा वा विषमज्वरेण।
द्वितीयके वाथ तृतीयतुर्ये गच्छन्ति तप्ता भ्रमिवत् क्रमेण ॥ ९५ ॥

ऐकाहिक याने प्रतिदिन याने विषमज्वरोंमें नाडी कभी कभी अपने स्थान अङ्गुष्ठमूलसे दूर पर फडकती है, पर शीघ्र ही दूसरे क्षण में अपने स्थानमें आ जाता है। यह क्रम चालू रहता है। द्वितीयक याने दूसरे दिन आने वाले पारीके ज्वरमें तथा तिजारी और चौथिया ज्वरमें नाडी गरम होकर भँवरकी तरह चलती है याने जैसे पानी कुछ दूर जाकर घूम जाता है और फिर बीचमें आता हुआ भवर बनाता है, नाडी भी वैसे ही कुछ दूर जा लौटती हुई सी मालूम होकर फिर आगे जाती है जिससे भँवर जैसा बोध होता है ॥ ९३ ॥

क्रोधजे सङ्गलग्नाङ्गा ससङ्गा कामजे ज्वरे (१)।
उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ॥ ९६ ॥

यदि क्रोधके कारण से सामान्य भावसे ज्वर हो जाय, तो नाडी अन्य नाडियों के साथ लिपट कर चलती हुई सी मालूम पड़ती है। कामजनित साधारण ज्वर में भी अन्य शिराओंके साथ संग हुई याने अटकती हुई सी चलती है। मतलब यह कि जैसे दो लताएँ आपसमें लिपटी रहती हैं, उसी प्रकार नाडी भी छूनेसे मालूम होती है। यही ज्वर यदि कुपित हो जाय याने तेज हो जाय तो नाड़ी उक्त प्रकार होती हुई गरम तथा जल्दी-जल्दी चलनेवाली हो जाती है ॥ ९६ ॥

उद्वेगक्रोधकालेषु भयचिन्ताभ्रमेषु च (२)।
भवेत् (३) क्षीणगतिर्नाडी ज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः ॥ ९७ ॥

---

(१) 'तथा स्यात् कामजे ज्वरे' इति पाठान्तरम्, तथा 'ससङ्गा' इत्यत्र 'सभङ्गा' इति वा पाठः। (२) 'उद्वेगक्रोधकामेषु भयचिन्ताज्वरेषु च' इति, तथा 'भयचिन्ताभ्रमेषु च' इति पाठान्तरद्वयम्। (३) भावक्षीणगतिर्नाडी' इति पाठान्तरम्।

उद्वेग याने हठात् मनमें किसी प्रकारकी उत्कण्ठा या भावका आवेग होना तथा क्रोध करनेके समय, भय, चिन्ता तथा चक्कर आना, इनमें नाडीकी गति क्षीण याने मन्दी हो जाती है। पीछे 'क्रोधात् वेगवती' कहने पर भी, यहां 'कालेषु' शब्द विचारणीय है। इस श्लोकसे ऐसा भी आशय आता है, कि जब कभी मनुष्य हठात् किसी भावविशेषके आवेग में आता है तो उसकी साधारण अवस्थासे इस अवस्थामें आनेके बीचका जो समय होता है, उसमें नाडी अवश्य ही क्षीण गतिवाली हो जाती है। ऐसा वैद्यसत्तमों को जानना चाहिये ॥ ९७ ॥

ज्वरे रमणादौ नाडीगतिः—

ज्वरे च रमणे नाडी क्षीणाङ्गी मन्दगामिनी।
ज्वरे कालार्त्तिरूपेण भवन्ति विकलाः शिराः ॥ ९८ ॥

यदि ज्वर से पीडित असंयमी पुरुष स्त्रीसंसर्ग कर ले, तो उसकी नाडी पतली सी होकर, मन्दी मन्दी चालसे चलती है। यदि ज्वरकालमें स्त्रीप्रसङ्ग की इच्छा हो तो नाड़ी विफल याने तेज तथा इधर-उधर भटकती सी होती है, जैसे किसी प्रिय वस्तुके खो जानेसे मनुष्य उसे पानेके लिये बिकल होकर चेष्टा कर रहा हो ॥९८॥

ज्वरे दध्यादिभोजनजा नाडी—

उष्णत्वं विषमा वेगा ज्वरिणां दधिभोजनात्। (१) ॥ ९९॥

ज्वरवाला पुरुष याने शरीरमें ज्वर हो और यदि दही खाय, तो उसकी नाडी गरम याने ज्वरसे तो गरम रहती ही है, पर इससे और भी गरम ही जाती है तथा विषम वेगसे याने कभी तेज कभी मन्दी चालसे चलती है ॥ ९९ ॥

कञ्जिकया ज्वराक्रान्ते जायते मन्थरा गतिः।
अम्लाशित्वादसुस्थत्वं जायन्ते तापिताः शिराः ॥ १०० ॥

ज्वरके पीडित अथवा कोई अन्य रोगसे भी पीडित मनुष्य, यदि काञ्जी सेवन करे तो नाडीगति मन्दी हो जाती है। असुस्थ शरीर वाला पुरुष यदि अधिक खटाई खावे, तो खटाईके पित्तकारक होनेकी वजहसे पित्त कुपित होकर नाडियोंको गरम कर देता है, इससे नाडी गरम मालूम होती है ॥ १०० ॥

ज्वरमुक्तौ व्यायामादौ नाडीगतिः—

व्यामामे भ्रमणे चैव चिन्तायां धनशोकतः।
नानाप्रकारं गमनं (२) शिरा गच्छति विज्वरे ॥ १०१ ॥

(१) 'दधिभोजिनाम्' इति पाठान्तरम्। (२) 'गमना' इतिपाठान्तरम्।

विज्वर याने ज्वर छूटते ही जबतक पूर्ण बल न आजाय; इस बीचमें व्यायाम कसरत आदि, भ्रमण, चिन्ता याने कार्यचिन्ता या पठन-पाठनादि चिन्ता तथा धन आदिके नाशका शोक, इनके करनेसे नाडीकी गति अनेक प्रकारकी हो जाती है, याने कभी तेज कभी मन्दी, कभी टेढ़ी, सीधी, आदि आदि ॥ १०१ ॥

इति ज्वरज्ञानम्।

अजीर्णे नाडी

अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिना परितो जडा।
प्रसन्ना तु द्रुता शुद्धा त्वरिता च प्रवर्त्तते ॥ १०२ ॥

अजीर्ण होनेसे नाड़ी कड़ी होकर दोनों ओरके सिराओंसे सटी हुई सी होकर मन्दी मन्दी चालसे चलती है। जीर्णावस्थामें याने भोजनके ठीक-ठीक हजम होने पर नाडी प्रसन्ना याने आलसहीन, कोमल, दोषों से शुद्ध तथा शीघ्रगति वाली होती है। यहाँ शीघ्रगति होने पर भी चञ्चलता नहीं होती क्योंकि यह दोषहीन होती है ॥ १०२ ॥

पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मन्दं मन्दं वहेत्सिरा।
असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ १०३ ॥

पक्वाजीर्ण याने अजीर्णके पक्वावस्थामें नाडी पुष्टिहीना याने गौरवहीन हल्की यों पतली सी होकर मन्दी-मन्दी फड़कती है। यदि अजीर्णनाडी रक्तपूर्णा हो तो कुछ गरमी ली हुई भारी होती है। यदि आमाजीर्ण हो यानी अजीर्णमें आम दोष हो तो नाडी अति मोटी और भारी होती है। चूंकि आम वातादि दोषों से संसृष्ट रहता है, इसलिए यह समझना चाहिये कि यदि आम कफसे संसृष्ट हुआ तो नाडी कुछ कोमल सी होकर मन्दी गति वाली होगी; पित्तसे संसृष्ट हुआ तो गति अपेक्षाकृत तेज तथा कुछ गरम होगी तथा वातसे संसृष्ट हुआ तो कठिन होकर कुछ ठेढोसी चलेगी। कहा भी है, 'तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च' इति ॥ १०३ ॥

सुखितमन्दाग्न्यादौ नाडी—

सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया चपला क्षुधितस्य च।

(U. G. C. Book Bank)
Ayurved College
LIBRARY

मन्देऽग्नौ क्षीणधातौ च (१)नाडी मन्दतरा भवेत् ।
मन्देऽग्नौ क्षीणतां(२)याति नाडी हंसाकृतिस्तथा ॥ १०४ ॥

सुखित याने जो सुखसे हैं अर्थात् भोजनादिसे ठीक ठीक अन्यूनाधिक तृप्त हैं; न अधिक खाया है, न भूखा ही है और न अजीर्णादि कोई दोष ही है, ऐसे पुरुष की नाडी स्थिर याने न मन्दी और न चञ्चल तथा न जड़ताके साथ फुर्तीली हो नियमित भावसे चलती है। भूखे की नाडी चञ्चल गति से चलती है, क्योंकि भोजनके अभावमें पित्त उद्रिक्त रहता है। मन्दाग्नि वाले की तथा क्षीणधातु पुरुषकी नाड़ी अधिक मन्द गतिसे चलती है। अग्निके मन्द होने पर नाडी क्षीण याने पतली होकर हंस की जैसी गतिवाली होती है याने मन्दी-मन्दी चलती है। कफदोषसे अग्निमान्द्य होनेसे नाडी मन्दी होती है ॥ १०४ ॥

आमाशयदुष्ट्यादौ नाडी—

आमाशये(३)पुष्टिविवर्द्धनेन भवन्ति नाड्यो भुजगाग्रवृत्ताः ।
आहारमान्द्यादुपवासतो वाऽतथैव नाड्यो भुजगातिवृत्ताः(४)॥१०५॥

आमाशयमें पुष्टिकी वृद्धि होनेसे याने पुष्टिकारक पदार्थों के अधिक खा लेने से नाडी साँपके अग्रभाग याने शिरोभाग की तरह गति करती है, अर्थात् साँप जिस तरह अगले हिस्सेमें अधिक मोटा न होकर कुछ चपटा गोल होकर कम वक्र होकर चलता है, नाडीभी उसी तरह से मालूम होती हुई चलती है। आहार की मन्दता याने कम खानेसे या उपवास आदि करनेसे, मतलब भूखे रहनेसे नाडी उसके बिपरीत साँप जैसे अति कुटिल होकर मन्द-मन्द गति करती है, वैसे ही चलती है याने सूक्ष्म होकर वक्रता लिये धीरे धीरे चलती है, क्योंकि

(१) 'मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च' इति पाठान्तरम्।
(२) 'शीतताम्' इति च पाठान्तरम्।
(३) 'आमाश्रये' इति पाठान्तरम्। इसका मतलब यह है कि आमका आश्रय याने आमाशय ही है। अथवा आमके आश्रय-सङ्ग रहनेवाला दोष याने आमयुक्त दोष।
(४) 'भुजगैकवृत्ताः' 'भुजगप्रमाणाः' तथा 'भुजगातिवृद्धाः' इति पाठान्तर-त्रयम्।

उपवास आदिसे वातका कोप तो होता है, पर आहार-मान्द्यसे बल क्षीण होने से नाडी मन्दी चलती है, ऐसा समझना चाहिये ॥ १०५ ॥

दीप्ताग्नौ नाडीगतिः—

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती स्मृता(१) ॥ १०६ ॥

जिस मनुष्य की अग्नि दीप्त हो उसकी नाडी हलकी याने न क्षीण न पुष्ट होकर वेगके साथ याने जल्दी-जल्दी चलती है। यहाँ न कहने पर भी नाड़ी कुछ गरम अवश्य रहती है। क्योंकि दीप्ताग्निमें पित्त का उद्रेक जरूर होता है तथा इसके विपरीत मन्दाग्निसे शीतलताका अभिधान है ॥ १०६ ॥

ग्रहण्यां नाडीगतिः—

पादे च हंसगमना (२) करे मण्डूकसंप्लवा ।
तस्याग्नेर्मन्दता देहे त्वथवा (३) ग्रहणीगदः ॥ १०७ ॥

जिसकी नाडी पादमें हंसगति करे याने पैरकी नाड़ी हंस जैसी मन्द-मन्द गति करे तथा हाथ याने कलाई पर मेढ़क जैसी कूद-कूद कर चले तो यह समझ लेना चाहिये कि या तो उसकी अग्नि मन्द हो गई है अथवा उसको ग्रहणी रोग हो

(१) 'बलवती मता' इति पाठान्तरम्। इतः परं क्वचित् पुस्तके पञ्च श्लोका अधिका दृश्यन्ते, यथा—

अतिसारे च मन्दा स्यात् ग्रीष्मकाले जलौकवत् ।
वातातिसारे वक्रत्वं चञ्चला पित्तसम्भवे ॥
राजहंसगतिर्यादृक् तादृङ् नाड्यः कफावृते ।
द्वन्द्वजातिसारे नाडीमुहुर्भेकगतिं तथा ॥
वातपित्तसमुद्भूतां प्रवदन्ति मनीषिणः ।
भुजगादिगतिं स्थूलां राजहंसगतिं तथा ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति महाधियः ।
मण्डूकादिगतिं नाडी मयूरादिगतिं तथा ॥
पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति विशारदः ।
सन्निपाते विलुप्ता तु नाडी भवति निश्चितम् ॥

(२) 'हंससदृशा' इति पाठान्तरम्।
(३) 'उदरे' तथा 'दुखतः' इति पाठान्तरद्वयम्।

गया है। मन्दाग्नि तथा ग्रहणी एक दूसरे की अपेक्षा से होने की वजहसे नाडी-की गति प्रायः एकसी रहती है, फिर भी बातादि दोषोंका अनुबन्ध जैसा है उसी-के अनुसार नाडीकी भी वक्रता आदि चालकी कल्पना करनी चाहिये ॥ १०७ ॥

ग्रहण्यतिसारादौ नाडीगतिः—

भेदेन शान्ता ग्रहणीगदेन निर्वीर्यरूपा त्वतिसारभेदे ।
विलम्बिकायां प्लवगा कदाचिदामातिसारे पृथुला जडा च ॥ १०८ ॥

यदि ग्रहणी रोगमें अधिक भेद याने दस्त अधिक हो तो नाडी शान्त याने बहुत ही क्षीण होकर मन्दी मन्दी चलती हुई कठिनतासे मालूम पडती है। अति सार रोगमें यदि बहुत ही दस्त आवें याने अतिसार रोग बढ़ जाय तो नाडी निर्वीर्यरूपा वीर्य-बल हीनके जैसी ढीली-ढीली होकर सूक्ष्म-सूक्ष्म तथा मन्द-मन्द चलती है। अतिसार बढ़ जानेसे नाडी अक्सर छूटभी जाया करती है तथा हाथ-पैर आदि पर गरमी पहुँचानेसे लौटभी आती है, पर बलवती नहीं होती, पूर्वोक्त के अनुसार बलहीना ही रहती है। विलम्बिका रोगमें नाडी कभी-कभी कूद-कूद कर याने मेंढक या कौवेकी तरह चलती है अर्थात् प्रायः शान्त ही रहा करती है कभी-कभी प्लवगति करती है। आमातिसारमें नाड़ी मोटी याने पुष्ट होकर अन्यान्य सिराओंसे सटी हुई सी होकर अचञ्चल गति करती है ॥ १०८ ॥

वेगरोधविसूच्योर्नाडी—

निरोधे मूत्रशकृतोर्विड्ग्रहे त्वितराश्रिताः ।
विसूचिकाभिभूते च भवन्ति भेकवत्क्रमाः ॥ १०९ ॥

पेशाब-पाखाने के वेग को रोकने से अथवा पाखाने तथा पेशाब के खुद रुकनेसे भी नाड़ीकी गति एक दोषको आश्रय करके चलती है याने मल या मूत्र अथवा दोनोंके ही रुकने या रोके जाने पर जो दोष कुपित होता है, नाड़ी उसी के अनुसार ही गति करती है। किन्तु वात प्रधानतासे ही कुपित होता है, यह न भूलना चाहिये। विसूचिका याने हैजा अथवा विष्टम्भ होकर सूई टोंचने-की पीड़ाका ही ग्रहण करनेसे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर आदिमें होनेवाले विष्टम्भ-का ग्रहण होगा, इनमें नाड़ी की गति मेंढककी जैसी होती है याने नाड़ी कूदती हुई चलती है। यह एक सामान्य लक्षण होनेके कारण अन्य स्थान कथित सूक्ष्मता, वक्रता आदि लक्षण भी रोगानुसार समझे ॥ १०९ ॥

आनाहमूत्रकृच्छ्रयोर्नाडी—

आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च भवेन्नाडीगरिष्ठता ॥ ११० ॥

आनाह तथा मूत्रकृच्छ्र रोगोंमें नाड़ी भारी हो जाती है, भारी होनेसे उसमें कठिनताका भी होना समझना चाहिये ॥ ११० ॥

शूलरोगे नाडी—

वातेन शूलेन मरुत्प्लवेन सदातिवक्रा (१) हि सिरा वहन्ति ।
ज्वालामयी पित्तविचेष्टितेन साध्मानशूलेन च पुष्टिरूपा (२) ॥ १११ ॥

बातशूलमें अथवा बातकी वृद्धि होने पर नाडी हमेशा अति टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती है। पित्तकर्तृक यदि शूल हो तो नाड़ी ज्वालामयी सी याने बहुत ही गरम होकर चलती है, यहाँ पित्तमें गरमके साथ चञ्चलता भी होती है। यदि शूलके साथ आध्मान उपद्रव हो तो नाड़ी पुष्ट याने स्थूल होकर चलती है। इस रोग में पवन ही मालिक होने की वजहसे नाडी कुछ न कुछ वक्र रहा करती है ॥ १११ ॥

प्रमेहरोगे नाडी—

प्रमेहे ग्रन्थिरूपा सा प्रतप्ता त्वामदूषणे ॥ ११२ ॥

प्रमेह रोग में नाड़ी गठीली सी प्रतीत होती है याने छूने से ऐसी मालूम होती है जैसे नाड़ीमें गांठें पड़ गई हों। यदि प्रमेह ही आम संसृष्ट हो तो नाड़ी कुछ गरमी लिये चलती है ॥ ११२ ॥

नाडीगत्या विषादिज्ञानम्—

उत्पित्सुरूपा विषविष्टिकाले(३) विष्टम्भगुल्मेन च वक्ररूपा ।
अत्यर्थवातेन (४) अधः स्फुरन्ती उत्तानभेदिन्यसमाप्तिकाले ॥ ११३ ॥

साँप आदि के काटनेसे या जहर खाजानेसे शरीरमें जब विष व्यापता है, उस समय नाड़ी ऊपरको कूदती हुई सी चलती है याने जैसे कूदनेवाला पहले शरीर-

---

(१) 'सदोपवक्रा' इति पाठान्तरम् ।
(२) 'वक्ररूपा' इति च पाठान्तरम् ।
(३) 'विषरिष्टिकाले' इति पाठान्तरम् ।
(४) 'विषाविष्टकानाम्' इति पाठान्तरम् ।

(U. G. C. Book Bank)

को संकोच करके कूदता है, वैसी ही नाड़ी भी ऐसी संकुचित होकर बहती है जैसे अभी मांस और चमड़ेको फाड़कर बाहर आना चाहती हो। विष्टम्भ याने हवा या मलके रुक जानेमें तथा गुल्म रोगमें नाड़ी टेढ़ी चलती है। यहां एक जगह कहनेसे यह समझना चाहिये कि नाड़ी ऊपरको आना चाहती हुई भी बक्र चलती है। यही विष्टम्भ तथा गुल्ममें यदि वायुका कोप विशेष भावसे हो तो नाड़ी टेढी-मेढ़ी होकर भी नीचेको जाती हुई सी फड़कती है याने मालूम होता है मानो नाड़ी अन्दरको प्रवेश कर रही है। असमाप्तिकाले याने विष्टम्भ और गुल्मकी पूर्ण सम्प्राप्ति होनेके पहले नाड़ी उत्तानभेदिनी याने ऊपरको कूदती हुई सी होकर चलती है अथवा असमाप्तिकाले याने अधोभागमें फड़कनेके समय पूर्ण न होते हुए मानो बीचमें ही गति बदलकर ऊपर भेदिनी हो जाया करती है ॥ ११३ ॥

गुल्मादौ नाडी—

गुल्मेन कम्पोऽथ पराक्रमेण पारावतस्येव गतिं करोति ॥ ११४ ॥

गुल्म रोगमें नाड़ी काँपती हुई सी चलती है। पराक्रम याने साहसके काम करनेमें नाड़ी कबूतरकी सी गति करती है याने कबूतर जैसे घूमती हुई गति करती है, नाड़ी भी बीच-बीचमें घूमती हुई गति करती है ॥ ११४ ॥

व्रणादौ नाडी—

व्रणेऽतिकठिने (१) देहे प्रयाति पैत्तिकं क्रमम् ।
भगन्दरानुरूपेण नाडीव्रणनिवेदने ।
प्रयाति वातिकं रूपं नाडी पावकरूपिणी ॥ ११५ ॥

शारीरव्रण जब अति कठिन दशामें याने अपक्व दशामें रहता है अर्थात् पाक होनेके पहले नाडी पित्तनाडी जैसी क्रमसे—कुलिंग, काक, मण्डूक आदि की जैसी चालसे चलती है। नाडीव्रण या नासूरमें नाडी भगन्दर जैसी चलती है। भगन्दर तथा नाडीव्रणमें नाडी पावकरूपिणी याने अति गरम होकर बातनाडी सी सर्प, जोंक आदि की जैसी टेढी—मेढी गतिसे चलती है ॥ ११५ ॥

(१) 'व्रणार्थकठिने' इति पाठान्तरम् ।

वान्तशल्याभिहतादेर्नाडीगतिः—

वान्तस्य शल्याभिहतस्य जन्तोर्वेगावरोधाकुलितस्य भूयः ।
गतिं विधत्ते धमनी गजेन्द्रमरालमालेव कफोल्वणेन ॥ ११६ ॥

इति नाडीविज्ञानं सम्पूर्णम् ।

जिसने कै किया हो, जो शल्य याने तीर, पत्थर, डंडे, गोली आदिके द्वारा पीडित हो याने जिसे ये सब लगे हों तथा जो मल-मूत्र आदिके वेगको धारण करनेके वजहसे पीड़ित हो, ऐसे मनुष्योंकी नाडी कफके अधिक कुपित रहनेके कारण हाथी तथा हंसोंकी श्रेणी जैसी मन्द मन्द गति करती है। कफ कुपित होनेसे नाडी कुछ मोटी भी जरूर रहती है ॥ ११६ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तवैद्यकृता 'विबोधिनी' भाषाटीका समाप्ता ।

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः

चौखम्बा सीरीज द्वारा प्रकाशित सम्मानित चिकित्सा ग्रन्थाः—

मानसिक एवं तन्त्रिका रोगचिकित्सा । (सचित्र) डा० प्रियकुमार चौबे । राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ २५-००

आयुर्वेद का इतिहास । (सचित्र) श्रीवागीश्वर शास्त्री विरचित, कविराज श्री सत्यनारायणशास्त्री जी द्वारा प्राक् अनुमोदित प्र० भाग १५-००

आयुर्वेद-प्रदीप । (आयुर्वेदिक-एलोपैथिक गाइड) परिवर्धित नवीन संस्करण । संपादक डा० गंगासहाय पाण्डेय २०-००

रसरत्नसमुच्चय । डा. अम्बिकादत्त शास्त्री कृत हिन्दी टीका २५-००

शालाक्यतन्त्र । डा० रमानाथ द्विवेदी । परिवर्धित संस्करण २५-००

सौश्रुती । डा० रमानाथ द्विवेदी ,, ,, २०-००

अगदतन्त्र । परिष्कृत संस्करण । डा० रमानाथ द्विवेदी ३-००

कौमारभृत्य । डा० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी । नवीन सस्करण १५-००

प्रारम्भिक रसायन । डा० फूल देवसहाय वर्मा १०-००

योगचिकित्सा । अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार ५-००

रोगनामावली कोष । (रोग निर्दशिका) ठा० दलजीत सिंह ६-००

यकृत् के रोग और उनकी चिकित्सा । वैद्य सभाकान्त झा ३-००

रसादि परिज्ञान । पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ४-००

सूचीवेध विज्ञान । डा. राजकुमार द्विवेदी ४-००

रसेन्द्रसारसंग्रहः । (सचित्र) 'गूढार्थसन्दिपिका' टीका सहित १०-००

रसेन्द्रसारसंग्रहः । (सचित्र) सविमर्श हिन्दी टीका सहित १०-००

शार्ङ्गधरसंहिता । सविमर्श सुबोधिनी हिन्दी टीका 'लक्ष्मी' टिप्पणी, पथ्याऽपथ्यादि विविध परिशिष्ट सहित १५-००

स्वास्थ्य-संहिता । नानकचन्द वैद्य कृत हिन्दी टीका सहित ४-००

काथमणिमाला । पं. काशीनाथ शास्त्रीकृत 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका ३-००

चक्रदत्त । वैद्य जगदीश्वरप्रसाद त्रिपाठी कृत हिन्दी टीका सहित ३०-००

सुश्रुत-शारीरस्थान । प्रभा-दर्पण हिन्दी टीका सहित शीघ्र

माडर्न इन्जेक्शन । (सचित्र) डा० प्रिय कुमार चौबे यन्त्रस्थ

हृदयदीपकनिघण्टुः सिद्धमन्त्रप्रकाशः । श्रीप्रोपदेवकृतः । सम्पादक- आचार्य प्रियव्रत शर्मा शीघ्र

प्राप्तिस्थानं—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-२२१००१